

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्
के लिए लाइब्ररी फैलोशिः हेतु समर्पित मोनोग्राफ

आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्ति

लेखिका

डॉ० एस. पद्मावती, एम.ए., पीएच.डी.

DECLARATION

I, Dr. Sailada Padmavathi, declare that this monograph titled "AUDHUNIK HINDI KAVITA MEIN VYAKTHI" submitted for the ICCR Library Fellowship for the year 2003-04, in Hindi language, has been written by me, which has not previously utilised for award of any degree, diploma, associateship, fellowship or any other similar title.

S. Padmavathi
11/12/2003
Dr. Sailada Padmavathi

Andhra Pradesh, Hyderabad.

7-8-102, Gowtham Nagar,
Ferozguda, HYDERABAD-11

प्रस्तावना

प्रस्तावना

व्यक्ति का महत्त्व समाज में किसी-न-किसी रूप में बढ़ता आ रहा है। इसे काल विशेष में बांधना समीचीन नहीं होता। व्यक्ति को आधार बनाकर उसकी चेतना को वैचारिक धरातल पर उतारने के प्रयास समय-समय पर किए गए हैं, जिनके परिप्रेक्ष्य में अस्तित्ववाद, व्यक्तिवाद आदि विचारधाराएँ उपस्थित हुई हैं। व्यक्ति-चेतना विषयक कई दृष्टिकोण विश्व भर में प्रचलित होने लगे। यद्यपि इस व्यक्तिवादी चेतना के कारण समाज का विकास भी होता आया, लेकिन इसे एक वाद एवं विचारधारा का रूप देने का श्रेय उन्नीसवीं शताब्दी को ही मिलता है।

व्यक्ति-चेतना के संबंध में पाश्चात्य विचारधाराओं से कुछ हद प्रभावित होने पर भी, व्यक्ति-चेतना विषयक भारतीय धारणाएँ मौलिक एवं परम्परागत जान पड़ती हैं। यह सर्वविदित है कि एक समय ऐसा था जब दुनिया भर के लोगों का भारत ने पथ-प्रदर्शन किया था, लेकिन पारम्परिक मान्यताओं में अंतर्लीन रूप से विद्यमान इस चेतना को एक वाद का रूप देने की ख्याति पाश्चात्य धारणाओं को मिला। इससे यह विचारधारा पश्चिम की खाल ओढ़कर उपस्थित हुई है और इसे एक नयी विचारधारा के रूप में स्वीकारने को हमें विवश होना पड़ा।

आधुनिक काल में भारत का सामाजिक जीवन पूरी तरह से परिवर्तित हुआ है। परिवर्तित परिवेशगत सन्दर्भों ने हजारों सालों से समाज में छिपी व्यक्ति-चेतना के उमड़ कर आने में अपना सहयोग दिया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर परिवर्तित परिवेश का व्यक्ति पर विशेष प्रभाव पड़ा। जिसका प्रतिफलन हमें साहित्य में स्पष्ट मिलता है। क्योंकि साहित्य को व्यक्ति की अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकरण के रूप में स्वीकारा जाता है।

"आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्ति" शीर्षक के अंतर्गत व्यक्ति-मानव की इस वैयक्तिक चेतना पर मैं प्रकाश डालने का प्रयास करती हूँ। मेरा यह प्रयास पाँच अध्यायों में किया गया है। प्रथम अध्याय, विषय प्रवेश के अंतर्गत विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत व्यक्तिकी

परिभाषा प्रस्तुत कर उसकी चेतना का स्वरूप आंका गया है। व्यक्ति के प्रति समाज के विभिन्न दृष्टिकोणों का संक्षिप्त विवरण इसमें प्रस्तुत है। व्यक्ति-मानव को प्रमुखता देने वाले व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का परिचय भी इस अध्याय में मिलता है। इसके अलावा व्यक्ति-चेतना संबंधी भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। विषयगत विविधता को दृष्टि में रखकर प्रथम अध्याय को सुविधानुसार विभिन्न शीर्षकों, यथा ; व्यक्ति की परिभाषा एवं व्यक्ति चेतना, व्यक्ति चेतना विषयक सामाजिक दृष्टिकोण, व्यक्तिवादी दृष्टिकोण एवं व्यक्ति चेतना, व्यक्ति चेतना विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोण, व्यक्ति चेतना विषयक भारतीय दृष्टिकोण में प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय, साहित्य में व्यक्ति चेतना का प्रतिफलन, के अंतर्गत व्यक्ति-चेतना के अंकन में साहित्य का योगदान प्रस्तुत किया गया है। यहाँ पर उल्लेखनीय बात यह है कि साहित्य में प्रथमतः 'व्यक्ति' रूप को यथास्थिति प्रस्तुत करने का श्रेय भी पाश्चात्य साहित्य को ही मिलता है। भारतीय साहित्य पाश्चात्य साहित्य का अनुगामी रहा। तृतीय अध्याय के अंतर्गत भारतीय साहित्य में व्यक्ति-चेतना का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए आधुनिक हिन्दी कविता का सहारा लिया गया है और सन्दर्भानुसार इस अध्याय के शीर्षक का नाम आधुनिक हिन्दी कविता का स्वरूप - व्यक्ति चेतना के सन्दर्भ में रखा गया है। इस अध्याय में उपलब्ध सामग्री के आधार पर आधुनिक हिन्दी कविता के स्वरूप का संक्षिप्त विश्लेषण किया गया है।

व्यक्ति चेतना का स्वरूप - युगीन सन्दर्भ में शीर्षक के अंतर्गत चतुर्थ अध्याय में हिन्दी कविता के माध्यम से परिवेशगत सन्दर्भ में व्यक्ति-चेतना के स्वरूप को अलग-अलग रूपों में, यथा, सामाजिक चेतना, आर्थिक चेतना, राजनीतिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना एवं धार्मिक चेतना के रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया। परिवेशगत सन्दर्भ के बाद व्यक्ति का वैयक्तिक सन्दर्भ आता है। जिसका अंकन पंचम अध्याय, व्यक्ति चेतना का स्वरूप - वैयक्तिक सन्दर्भ में के अंतर्गत किया गया है।

पंचम अध्याय में व्यक्ति स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए व्यक्ति-जीवन के वैयक्तिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है। परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति-मानव की अपेक्षाओं और मान्यताओं पर ध्यान रखते हुए विभिन्न शीर्षकों, जैसे ; व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना, समष्टि में व्यष्टि के महत्त्व का प्रतिपादन, वैयक्तिक जीवन मूल्यों

की अभिव्यक्ति, व्यक्ति-जीवन में बौद्धिकता का प्रवेश, व्यक्ति जीवन में अस्मिता की खोज, संघर्ष - जीवन की नियति के अंतर्गत व्यक्ति-जीवन के अनेक पहलुओं का विवेचन किया गया है। इस विवेचन के अंतर्गत व्यक्ति-जीवन की संश्लिष्टता व तनावग्रस्तता को नवीन अर्थ देने के प्रयास में देश-काल एवं वातावरण का अनूठा चित्रण और उपलब्ध सामग्री के आधार पर आधुनिक हिन्दी कविता का विशद अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। "उपसंहार" में उपर्युक्त अध्यायों में तथ्यों की खोज से प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है।

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् ने मुझे 'लाइब्ररी फेलोशिप' के अंतर्गत यह 'मोनोग्राफ' बनाने का सुअवसर प्रदान किया है। जिसके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ। इस अवसर पर परिषद् ने मुझे विभिन्न विश्वप्रसिद्धियों का दर्शन कर आवश्यक सामग्री संकलित करने का मौका दिया है। इसके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। परिषद् की ओर से समय-समय पर मुझे जो प्रोत्साहन मिला है, उसके लिए मैं बहुत ही आभारी हूँ।

एस. पद्मावती
21/25-5
(डॉ० एस. पद्मावती)
हैदराबाद, आन्ध्र प्रदेश।

विषय-क्रमणिका

	पृ.सं.
प्रथम अध्याय : विषय प्रवेश	1
1.1 व्यक्ति की परिभाषा एवं व्यक्ति-चेतना	3
1.2 व्यक्ति-चेतना विषयक सामाजिक दृष्टिकोण	4
1.3 व्यक्तिवादी दृष्टिकोण एवं व्यक्ति-चेतना	8
1.4 व्यक्ति-चेतना विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोण	10
1.5 व्यक्ति-चेतना विषयक भारतीय दृष्टिकोण	12
द्वितीय अध्याय : साहित्य में व्यक्ति-चेतना का प्रतिफलन	14
तृतीय अध्याय : आधुनिक हिन्दी कविता का स्वरूप - व्यक्ति-चेतना के सन्दर्भ में	17
चतुर्थ अध्याय : व्यक्ति-चेतना का स्वरूप - युगीन सन्दर्भ में	28
4.1 सामाजिक चेतना	30
4.2 आर्थिक चेतना	34
4.3 राजनीतिक चेतना	38
4.4 सांस्कृतिक व मूल्यगत चेतना	41
4.5 धार्मिक चेतना	43
पंचम अध्याय : व्यक्ति-चेतना का स्वरूप - वैयक्तिक सन्दर्भ में	48
5.1 व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना	50
5.2 समष्टि में व्यष्टि के महत्त्व का प्रतिपादन	54
5.3 वैयक्तिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति	58
5.4 व्यक्ति-जीवन में बौद्धिकता का प्रवेश	61
5.5 व्यक्ति-जीवन में अस्मिता की खोज	68
5.6 संघर्ष - जीवन की नियति	77
उपसंहार	84
सन्दर्भ	87

प्रथम अध्याय

विषय ग्रन्थ

1.1 व्यक्ति की परिभाषा एवं व्यक्ति-चेतना

1.2 व्यक्ति-चेतना विषयक राज्याजक दृष्टिकोण

1.3 व्यक्तिवादी दृष्टिकोण एवं व्यक्ति-चेतना

1.4 व्यक्ति-चेतना विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोण

1.5 व्यक्ति-चेतना विषयक भारतीय दृष्टिकोण

1.1 व्यक्ति की परिभाषा एवं व्यक्ति चेतना :

सृष्टि में व्यक्ति को सर्वोच्च माना गया है । वह विश्व का अनूठा उपादान है, जिसकी प्रतिष्ठा तथा स्वतंत्रता की महत्ता सभी धर्मों में, विश्वासों तथा विचारधाराओं में स्वीकार की गयी है । ईश्वर में अस्था रखने वाले 'अहंब्रह्मस्मि' कहकर व्यक्ति में ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति पाते हैं, तो अनीश्वरवादी कार्ल मार्क्स ने व्यक्ति की सर्वशक्तिमत्ता को प्रतिष्ठित किया है । वस्तुतः दार्शनिक तथा सामाजिक चिंतन का केन्द्र ईश्वर, पदार्थ तथा विज्ञान न रहकर स्वयं मनुष्य ही रहा है । इससे पता चलता है कि व्यक्ति कितना महत्वपूर्ण प्राण ठहरता है । इसलिए इसे पारिभाषित करना सरल कार्य नहीं है ।

कॉरपस न्यूरिस ने व्यक्ति के बारे में लिखा था - "बुद्धिशून्य पशु तथा जड़ वस्तु से भिन्न जीवन, बुद्धि, इच्छा शक्ति तथा स्वतंत्र अस्तित्व से संपन्न प्राणी, शरीर और मस्तिष्क से युक्त जीवन, मानव जाति का प्रतिनिधि, शरीर और आत्मा से बना मनुष्य, पुरुष, स्त्री, बच्चा, नैतिक आदर्शों का अभिकर्ता, आत्म चैतन्य प्राणी ही संपूर्ण व्यक्ति है ।" मनो वैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति निज के मस्तिष्क से संपन्न प्राणी है जो भूत और भविष्य में देखने की क्षमता रखता है, साथ ही अपने निजी तथा वैयक्तिक संसार का अवलोकन करने में समर्थ है । वह संवेग और भावनाओं से युक्त एक सामाजिक तथा नैतिक प्राणी है, जिसके व्यक्तित्व का विकास तथा निर्माण सामाजिक पर्यावरण में होता है । इतना ही नहीं, वह एक विवेकशील प्राणी है जो स्वयं के कर्मों का परीक्षण और मूल्यांकन करता रहता है तथा सत्य एवं मिथ्या और अच्छाई एवं बुराई के बीच भेंट करता हुआ अपनी तृटियों का सुधार करता रहता है ।

प्राचीन काल से ही "व्यक्ति" अध्ययन तथा जिज्ञासा का केन्द्र रहा है । विश्व का कोई ऐसा दर्शन नहीं है जिसने व्यक्ति का विशद अध्ययन न किया हो । सभी दर्शनों ने व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार किया है । फ्रांसीसी दार्शनिक सुकारात ने कहा था, "व्यक्ति कोई ब्रह्मांडीय संयोग नहीं है प्रत्युत अपना प्रमुख विशिष्ट कर्म करने हेतु समस्त प्रकृति के विधान का उत्कृष्ट आयाम है । वही प्रकृति के रहस्यों को समझ सकता है तथा इस विधान के साथ सामरस्य स्थापित करते हुए वह अपने जीवन तथा क्रियाकलापों को निश्चित दिशा प्रदान कर सकता है ।" सुकारात ने अपने इस कथन में व्यक्ति की क्षमता को स्वीकार किया है । यहूदी दर्शन के अनुसार, व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य समाज तथा

मानव जाति की सेवा करना है । मनुष्य का मूल्य अंततः समाज के लिए उसकी उपादेयता द्वारा ही आंका जायेगा । प्राचीन चीनी दर्शन में भी व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार किया गया है ।

भारतीय दर्शन में व्यक्ति को संसार की केन्द्रीय शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है । इसके अनुसार व्यक्ति का क्षेत्र इस दृश्य जगत तक ही सीमित नहीं है, प्रत्युत वही ब्रह्म तक पहुँच सकता है । जब हृदय की कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं, तब मनुष्य अमर हो जाता है और इस लोक में ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । भारतीय दर्शन में व्यक्ति-प्रतिमा की निर्मिति में प्रधानतः नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है ।

विश्व के प्रायः सभी दर्शन व्यक्ति को किसी-न-किसी अलौकिक शक्ति के आलोक में देखते हैं, किन्तु मार्क्सवादी दर्शन ने पहली बार व्यक्ति को संसारेतर शक्तियों से मुक्त एक व्यक्ति के रूप में देखने का प्रयास किया । मार्क्सवादी दर्शन सभी प्रकार की अलौकिक शक्तियों के अस्तित्व को नकारता है । मार्क्सवादी दर्शन के अनुसार व्यक्ति अपना निर्माण स्वयं करता है, अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं खोजता है तथा अपने क्रियाकलापों, अपनी समस्याओं, असफलताओं का नियंत्रण स्वयं है । मार्क्स और एंजिल्स ने यह स्पष्ट किया था कि "व्यक्ति-क्षमता का सार प्रत्येक व्यक्ति में सूक्ष्म रूप से अंतर्निहित नहीं है । वस्तुतः मानव क्षमता तो उसके सामाजिक संबंधों का प्रतिफलन है।"³ मार्क्सवादी दर्शन एक ऐसे व्यक्ति की परिकल्पना करता है, जो समाज में रहकर ही अपनी समस्याओं का समाधान खोज सकता है और वह अपने आप में सभी प्रकार की अलौकिक तथा संसारेतर शक्तियों से मुक्त है ।

1.2 व्यक्ति चेतना विषयक सामाजिक दृष्टिकोण :

समाज समान आदतों, लक्ष्यों तथा विचारवाले व्यक्तियों का समूह है तथा ही आदतें, लक्ष्य तथा विचार उन व्यक्तियों को एकता में बांधे रखने में समर्थ होते हैं । इस बिन्दु पर बहस हो सकती है कि व्यक्ति और समाज में से कौन प्रमुख है, किन्तु यह निर्विवाद है कि व्यक्ति के बिना समाज की तथा समाज के बिना व्यक्ति की कल्पना भी अधूरी है । समाज द्वारा प्रदत्त व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण हैं । व्यक्ति के प्रति

समाज के इन दृष्टिकोणों को विभिन्न प्रकार से जाना जा सकता है। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

प्राणिशास्त्रीय दृष्टिकोण :

इसके अंतर्गत समाज स्त्री व पुरुष की यौन संबंधी इच्छाओं की पूर्ति परस्पर कराता है । इन यौन संबंधों के द्वारा ही सन्तान की उत्पत्ति होती है और इस प्रकार जातियों-प्रजातियों का निर्माण होता है । समाज की यह व्यवस्था आरंभ से ही चली आ रही है ।

शारीरिक दृष्टिकोण :

व्यक्ति के प्रति इस दृष्टिकोण में समाज व्यक्ति के द्वारा आनेवाली सन्तान का पालन-पोषण तो कराता ही है, साथ-ही-साथ उसके स्वास्थ्य की देख-रेख, भोजन की व्यवस्था तथा विकास, स्थान व वस्त्राभूषणों की व्यवस्था भी कराता है । सन्तान आत्म निर्भर होकर माता-पिता के प्रति क्रूर व्यवहार क्यों न करें, परन्तु माता-पिता अपने उक्त कर्तव्य से वंचित नहीं होते ।

शैक्षणिक दृष्टिकोण :

समाज के द्वारा शिक्षा की व्यवस्था की गई है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा लेकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिसे वह अपनी परवर्ती पीढ़ी को देने के लिए भी वाध्य है । उसे इस तरह के कष्ट और दुःखों को सहन करते हुए अपनी पीढ़ी को शिक्षा दिलानी पड़ती है ।

आर्थिक दृष्टिकोण :

आज के युग में अर्थ-जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व बन गया है । वैज्ञानिक विकास के कारण अर्थ-व्यवस्था को नए-नए मूल्य प्रदान हुए हैं । आर्थिक दृष्टिकोण के कारण अब नारी भी पुरुष की तरह स्वतंत्र है । अब परिवार-पालन का उत्तरदायित्व जितना पुरुष पर है, उन्ना ही स्त्री पर भी । अब बेटा-बेटी में कोई अंतर नहीं रहा है ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण :

स्त्री-पुरुष के परस्पर यौन-संबंधों के पश्चात् उत्पन्न सन्तान का केवल पालन-पोषण करने से ही उनके कर्तव्य की पूर्ति नहीं हो पाती है, अपितु समाज ने ऐसी व्यवस्था कायम कर रखी है कि पिता जब तक जीवित रहता है, अपनी उस संतान को अपने संरक्षण में रखता है। माँ अपने बच्चों को ममता प्रदान करती है। यही नहीं, माता-पिता को अपने बच्चों की मानसिक संतुष्टि एवं शांति को भी निरंतर बनाए रखना होता है। समाज द्वारा निर्मित इन मानदण्डों का प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पालन करना पड़ता है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप यद्यपि उन मूल्यों में गिरावट आई है, परन्तु भारतीय परंपरा और संस्कृति ऐसी रही है कि यहाँ पर सदैव से आदर्श व नैतिकता का ही पालन-पोषण होता रहा है।

सामाजिक दृष्टिकोण :

जन्म लेने के पश्चात् स्त्री-पुरुष दोनों को भी सामाजिक दायित्व का वहन करना पड़ता है। संपूर्ण समाज के प्रति दया, स्नेह, सहानुभूति, आत्मीयता आदि रखते हुए मानवता के सिद्धांतों का समाज के संदर्भ में पूर्णतः पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक दायित्व होता है। व्यक्ति की उन्नति-अवनति इन्हीं सामाजिक दायित्वों के कुशल संचालन पर निर्भर करती है, लेकिन आज स्थिति इतनी खराब हो गई है कि व्यक्ति अपने कर्तव्य का पालन तो अवश्य करता है, परन्तु बदले में कुछ चाहता है। इसी स्वार्थ-वृत्ति के कारण रिश्तखोरी, कालाबाजारी आदि सामाजिक बुराइयों ने जन्म ले लिया है। परिणामस्वरूप व्यक्ति के जीवन में घुटन, कुंठा, व्यथा और अनेक प्रकार की विसंगतियों ने घर कर लिया है।

सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्य संबंधी दृष्टिकोण :

व्यक्ति चाहे जितना ही कठोर और निष्ठुर क्यों न हो जाए, एक समय ऐसा आता है कि धर्म के नाम पर ही उसे शांति प्राप्त होती है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से व्यक्ति को अपने समकालीन समाज का ही नहीं, अपितु परवर्ती समाज का भी ध्यान रखना होता है।

राजनैतिक दृष्टिकोण :

भारत में लोकतंत्रीय प्रणाली होने के कारण यहाँ पर व्यक्ति द्वारा निर्मित कानूनों का पालन अधिक होता है । जनता के हित को ध्यान में रखते हुए किसी भी नेता को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे समाज, देश, राष्ट्र का अहित होने की संभावना हो । इसी प्रकार का दृष्टिकोण समाज ने राजनीतिज्ञों को सौंपा है, लेकिन स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में राजनीति में गंदगी का वातावरण फैल गया है । लोकतंत्रीय प्रणाली अब विषाक्त हो चली है । आज हर नेता में कुर्सी से चिपकाने की आदत बन गई है । राजनीतिज्ञों में दया, हित, प्रेम, सहानुभूति आदि की भावनाओं का स्थान क्रूरता और स्वार्थ ने ले लिया है ।

साहित्यिक दृष्टिकोण :

समाज का सच्चा प्रतिबिम्ब साहित्य में झलकता है । दूसरे शब्दों में सच्चा साहित्यकार वही है जो समाज का यथार्थ चित्रण करता है । साहित्यकार समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई है । समाज को सुधारने-संभालने की बहुत कुछ जिम्मेदारी साहित्यकार की होती है । बहुत से व्यक्ति समझाने-बुझाने से नहीं मानते, किन्तु साहित्यिक कृति के पाठ-पाठन करने से उसी बात को मान जाते हैं । अतः व्यक्ति का साहित्यकार के रूप में बहुत बड़ा कर्तव्य होता है । समाज ने व्यक्ति को ऐसा दृष्टिकोण प्रदान किया है कि व्यक्ति यदि साहित्यकार के रूप में ऊपर उठता है तो समाज के प्रति सच्ची सद्भावना से कार्य करे । उसी में समाज, देश एवं राष्ट्र की भलाई है । अधिकांश साहित्यकारों ने व्यक्ति के प्रति समाज के इस दृष्टिकोण का पालन किया है, परन्तु कुछ साहित्यकार स्वार्थ की परछाई में अर्थ की महत्ता के आगे इनते अंधे हो गये हैं कि वे 'अच्छे-बुरे' का बिना ध्यान किये साहित्य-रचना में निमग्न हैं ।

अस्तु, उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाज ने व्यक्ति को हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की हैं । व्यक्ति इनसे लाभ उठाए या न उठाए, यह उसका कर्तव्य है । समाज बदले में व्यक्ति से कार्य आवश्यक कराता है । यही नहीं, व्यक्ति भी उन कार्यों को करने के लिए बाध्य है, क्योंकि उसी में उसका हित है । जब व्यक्ति-हित है तब समाज का भी हित उसमें निहित है और व्यक्तियों की भलाई में ही समाज की भी भलाई है ।

1.3 व्यापक दृष्टिकोण एवं व्यक्ति चेतना :

समाज स्वतंत्र व्यक्तियों का मेल है । अतएव समष्टिगत विचारों एवं लक्ष्यों का व्यक्ति पर उसके अधिकारों पर बलपूर्वक नियंत्रण रखना समीचीन नहीं है । हर एक व्यक्ति अपने अधिकारों स्वार्थों और हितों को भली-भांति समझता है । यह कार्य समाज नहीं कर सकता । व्यक्ति-हित को लक्ष्य बनाकर चलनेवाली विचारधारा को **व्यक्तिवादी विचारधारा** कहा जाता है ।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्व व्यक्तिवाद का विकास-क्षेत्र ऐंग्लो-सैक्सन परिगणना के योग रहा, जबकि बीसवीं शताब्दी के आसपास उसका अस्तित्व जन समाज में उभर आया । 'व्यक्तिवाद' शब्द अंग्रेजी शब्द 'इन्डिविडुवलिज्म' शब्द का अनुवाद है, जिसका प्रयोग यूरोप में कुछ पारिभाषिक अर्थों में हुआ है । अलक्सीस दे येक्विले ने इसका प्रयोग मर्यादित व्यक्ति-स्वातंत्र्य के अर्थ में किया है ।⁴ उसके अनुसार मानव का मुख्य संबंध उसके परिवार और मित्रों से होना चाहिए ।

व्यक्तिवाद का प्रयोग "लिबरलिज्म" के अर्थ में भी होता है । दोनों सिद्धांत व्यक्ति-स्वातंत्र्य को शीर्षस्थ महिमा देते हैं । मानव स्वभाव के व्यक्तिवादी सिद्धांत के अनुसार साधारण वयस्क मानव का हित तभी सम्पन्न हो जाएगा जब उसे अपने लक्ष्यों और साधनों के चुनाव में पूरी स्वतंत्रता प्राप्त हो । अपने कर्म क्षेत्र में उसे पूरी जिम्मेदारी और स्वाधीनता होनी चाहिए ।⁵ व्यक्तिवाद परम्परागत नियन्त्रण और अधिकार का निषेध करता है, क्योंकि परम्परा हमेशा समाज-सोपक्ष है, व्यक्ति-सापेक्ष नहीं ।

राजनीतिक, दार्शनिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्रों में व्यक्ति के स्वातंत्र्य और महिमा को जब-जब दबाया गया, तभी उसके विरुद्ध फूट निकला और व्यक्ति स्वातंत्र्य की विजय पताका फहरायी गयी । व्यक्ति महिमा की स्थापना के प्रयासों में ही व्यक्तिवादी चिंतन और जीवन दर्शन का आविर्भाव हुआ ।

आधुनिक युग में "व्यक्ति" और "व्यक्तिनिष्ठता" की व्याख्या करने में अस्तित्ववादी दर्शन का स्थान महत्वपूर्ण है । अस्तित्ववादी विचारधारा मनुष्य का मूल्यांकन उसकी भौतिक समृद्धियों के आधार पर नहीं, बल्कि उसके मौलिक, गुणों,

स्वतंत्रता, इयत्ता, अस्मिता और भीतरी ताकत के आधार पर करती है । अस्तित्ववादियों के अनुसार व्यक्ति अपने अस्तित्व को लेकर चिंतित है । अपनी समस्त अवशता में मनुष्य ही अस्तित्ववादी चिंता का केन्द्र बिन्दु है और इस अवशता को नष्ट करने के लिए अस्तित्ववाद मानवीय स्वातंत्र्य का प्रबल समर्थक है । अस्तित्ववाद मानता है कि जीवन में भय, संत्रास, असुरक्षा, निर्णयहीनता, अवसाद आदि व्यक्तित्व का संकट पैदा करनेवाली स्थितियां हैं । इन स्थितियों का सामना करना जरूरी है और व्यक्ति के अस्तित्व की सार्थकता इन स्थितियों को सामना करने की क्षमता पर निर्भर करती है । यह विचारधारा व्यक्ति के अस्तित्व पर जोर देते हुए उसे एक मानवीय अर्थ तथा मूल्य देने की चेष्टा करता है ।

व्यक्तिवाद और अस्तित्ववाद अपने-अपने लम्बे इतिहास में अपनी-अपनी सफलताओं के नाते ही नहीं, प्रत्युत अपनी-अपनी असफलताओं के नाते भी महत्वपूर्ण हैं । इनकी सफलता इस बात में है कि जब कभी इतिहास में निरंकुशता ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों को छीनने का प्रयास किया गया, इन्होंने उसकी सामाजिक प्रतिक्रिया की है । इनकी असफलता यह है कि अधिकतम प्रचुरता प्राप्त करने पर भी इन विचारधाराओं की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं ।

व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास के फलस्वरूप व्यक्ति और समाज के संबंधों का स्वरूप बदलने लगा । पारिवारिक संबंधों में व्यक्तिवादी मानसिकता की स्वार्थी और आत्मलिप्त मनोवृत्ति प्रकट होने लगी । समाज में पारिवारिक एकता की प्रतिष्ठा का अवमूल्यन होने लगा । भोग, स्वच्छन्दता, अद्वैतिक विचारणा की प्रवृत्ति भी व्यक्तिवाद की ही देन है । व्यक्तिवादिता की प्रवृत्ति के संदर्भ में डॉ. धर्मवीर भारती ने वर्ड्सवर्थ के विचारों के आधार पर लिखा है - "व्यक्तिवादिता उत्साहपूर्ण अन्धप्रेरणाओं से हमारे व्यक्तित्व में उदय होनेवाली वह मनोवृत्ति है जो हमें व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर उन्मुख करती है ।" ⁶ अतः व्यक्तिवादी चेतना के विकास क्रम में सामाजिक नियमों का हास होने लगा ।

उन्नीसवीं शती के वैज्ञानिक विकासवाद ने व्यक्तिवादिता को कुछ हद तक संकुचित कर दिया है और यह निरूपित किया कि मनुष्य केवल सामाजिक प्राणी ही नहीं है, वह सामाजिक कार्यकर्ता भी है । वह मानवीय गुणों से विभूषित है, अतएव उसका कार्य केवल

अपने स्वार्थों की पूर्ति नहीं है, उसे अपने सञ्जीवनों की भी उन्नति करनी है । इस रूप में उसे वंशानुक्रम से चले आ रहे व्यवहारों, सद्दिचारों, भावनाओं आदि का ध्यान रखना अनिवार्य है । ये तथ्य व्यक्ति-स्वातंत्र्य और सामाजिक अधिकार दोनों को एक सीमा में निहित करते हैं । वस्तुतः आदर्श सामाजिक व्यवस्था किसी एकांगी परिस्थिति पर टिक नहीं सकती, चाहे वह समष्टिवाद हो या व्यक्तिवाद । पृथक् होकर दोनों ही अकेले हैं, नितांत एकांगी, निःसंग, अतः अर्थहीन ।

1.4 व्यक्ति चेतना विषयक पाश्चात्य दृष्टिकोण :

प्राचीन धर्मों में व्यक्ति को समाज का एक अंग माना गया था । समाज की उन्नति में व्यक्ति की उन्नति निहित है । इस रूप में व्यक्ति का विकास समाज का प्रथम कर्तव्य होता है । धर्म ने व्यक्ति को महत्ता तो दी, पर उसका स्वरूप बदलता गया । कालान्तर में पुरोहितों, मठाधीशों ने धर्म का नेता बनकर समाज का संचालन किया । जहाँ तक यह कार्य सद्भाव से हुआ, समाज की निरंतर उन्नति ही हमें सर्वत्र मिलती है, पर जिस समय से ये व्यक्ति अपने स्वार्थों से प्रेरित होने लगे, समाज में आंतरिक संघर्षों को ही व्याप्त करने लगे । पुरोहितों ने अपने आपको ईश्वरीय प्रतिनिधि सिद्ध करने का जो बीडा उठाया, वह धार्मिक रूप से व्यक्ति के पतन का कारण बना । धार्मिक रूप से व्यक्ति को उद्धारने में ईसा, लूथर आदि व्यक्तियों का योगदान रहा ।

धर्म और संस्कृति अन्योन्याश्रित हैं । अतएव जो घटनाएँ धर्म में घटी हैं, वे ही संस्कृति के विकास की प्रवर्तक और बाधक, दोनों रूपों में सामने आई हैं । संस्कृति के अन्तर्गत साधारणतः देशगत नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र को महत्त्व दिया गया है । धार्मिक रूप से व्यक्ति के महत्त्व को ऊपर स्पष्ट किया गया है और अब नैतिक रूप से उसके महत्त्व का परिशीलन करेंगे । यहाँ पर नैतिकता तीन रूपों में मिलता है । प्रथम, राष्ट्रीय परंपराओं में और रीति-रिवाजों की आलोचना में, द्वितीय व्यक्ति-जीवन में नैतिक जीवन की संस्थिति में और तृतीय व्यक्ति के नैतिक जीवन के विकास को जीवन का मूल उद्देश्य मानने में । इनमें प्रथम रूप सोफिस्ट, द्वितीय सोक्रेटीज़ और तृतीय एपीक्यूरियन और स्टोइक विद्वानों के विचारों में स्पष्ट होता है । सोफिस्ट ने राष्ट्रीय परंपराओं के संबंध में अपने विचार दिये । सोक्रेटीज़ ने नैतिक जीवन के निर्माण के लिए तर्क का आश्रय लिया । अन्य विद्वानों में एपीक्यूरियन ने व्यक्ति सुख को प्रधानता दी है ।

साहित्य में व्यक्ति की अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकरण मिलता है। साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्राचीन साहित्य में व्यक्तिगत जीवन या व्यक्ति-स्वातंत्र्य की गणना नहीं हुई थी। काव्यनवोत्थान के युग से लेकर ही व्यक्ति का स्वर और व्यक्ति-महिमा की ओर प्रतिभावान कवियों का ध्यान आकृष्ट होने लगा था।

ग्रीक त्रासदीय नाटकों में व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता और व्यक्ति की त्रासदी का तत्त्व उपलब्ध होता है। मध्ययुग के सामन्तवादी साहित्य में तो, अधिकांश रूप में सामाजिकता की ही भावना अधिक शक्तिशाली रही है, परन्तु परंपराओं के विरुद्ध व्यक्ति की विद्रोह भावना भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। परंपरा और शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करके शेक्सपीयर और मारलोव ने नयी और स्वतंत्र उद्भावनाओं का परिचय दिया। शेक्सपीयर ने प्रथमतः चरित्र-चित्रण में व्यक्ति-वैचित्र्य को प्रतिष्ठित किया। शेक्सपीयर के पात्र व्यक्तित्व संपन्न हैं। वस्तुतः चरित्र-चित्रण में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का समावेश शेक्सपीयर के चरित्र-चित्रण-कला की विशेषता मानी जा सकती है। जॉन मिल्टन ने अपना काव्य "पारडैस लॉस्ट" में वैयक्तिक अधिकार और स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संत्रास करने वाले पात्र के रूप में "सेयरन" का चरित्र रूपायित किया है। क्रिस्टफर मारलोव ने भी अपने अनश्वर पात्र "फास्टस" में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की चेतना भर दी है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य से, जो अठारहवीं शताब्दी में भाव और शिल्प के स्थूल नियमों और परंपराओं पर बल देने वाली क्लॉसिक काव्य पद्धति के प्रति विद्रोह के रूप में विकसित हुआ है, व्यक्ति-स्वातंत्र्य को महत्व मिलने लगा है। समाज और साहित्य के इतिहास में स्वच्छन्दतावाद ने व्यक्ति की अपराजेय महानता का सुदृढ़ समर्थन किया।⁸ वास्तव में रोमान्टिक भावना व्यक्ति-मानव के निजी अधिकारों की उद्घोषणा करती है, समष्टि के सामने सिर झुकाने के विरुद्ध व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है। ब्लेक, वर्डस्वर्थ, शेल्ली, कीट्स आदि रोमान्टिक कवियों ने व्यक्तिवाद को नया आयाम और सफल अभिव्यंजना दी। कालरिज ने भी सहजता और सरलता से व्यक्ति-महिमा को स्वीकारा। व्यक्ति-स्वातंत्र्य को तीव्र अभिव्यक्ति देने में रोमान्टिक कवि बेटन का भी नाम उल्लेखनीय है।

व्यक्तिवादी होने के कारण रोमान्टिक कवि समाज और भीड़ से अलग होकर एकाकिता और नीरवता का आश्रय लेते हैं। समाज की कठोर वास्तविकता से पलायन कर वे अपने निजी भावजगत में रहते हैं। अतः रोमान्टिक कवि इस दृष्टि से पलायनवादी भी है। यूरोपियन रोमान्टिक काव्य का सर्वेक्षण करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वह व्यक्ति के अहं और अकेलापन को विशेष महत्त्व देता है। अतः यह निर्विवाद है कि अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन तीनों भाषाओं के रोमान्टिक साहित्यों ने व्यक्तिवाद को शीर्षस्थान प्रदान किया।⁹

व्यक्तिमूलक जीवन-दृष्टि की अभिव्यक्ति में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद और हिन्दी छायावादी काव्य में आश्चर्यजनक समानाएँ हैं। सामाजिक और राजनीतिक भूमिकाओं की भिन्नता के कारण यद्यपि दोनों काव्यधाराओं में कतिपय भिन्नताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, लेकिन नैराश्य, अवसाद, व्यक्ति-महिमा, विद्रोही भावना, पलायनवृत्ति आदि में दोनों काव्यधाराओं में समान दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं।

हिन्दी छायावादी काव्य मूलतः व्यक्ति-प्रधान है। द्विवेदी युगीन काव्य की इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता की नींव पर स्थापित यह काव्य "स्थूल" के प्रति "सूक्ष्म" का विद्रोह था। अतः व्यक्ति के स्वकीय अनुभूतियों और अन्तःसंघर्षों को लेकर यह काव्यधारा विकसित हुई थी। व्यक्तिवादी चेतना छायावाद के चारों स्तंभ ; प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी में पायी जाती है।

छायावादोत्तर काल में अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि नए कवि आधुनिक जीवन के संकीर्ण सन्दर्भों में व्यक्ति की प्रसंगिकता, एकाकिता और नई अर्थवत्ता की खोज करने वाले हैं। नये कवियों की दृढ़ धारणा यह है कि साहित्य की मौलिकता और सृजनशीलता की भूमि व्यक्तिवादिता मात्र है। आधुनिक मानव के अलगाव, नैराश्य, अकेलापन, निरर्थकताबोध, अजनबीपन, खण्डित व्यक्तित्व, अपरिचय, आत्मनिर्वासन आदि नव्य भावों को, व्यक्ति के स्तर पर नव कविता के प्रणेताओं ने अभिव्यक्त किया है और उन्होंने व्यक्ति-मानव के संवेदनात्मक रूप को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया। इनके प्रयास के अवलोकन पर व्यक्ति का एक समग्र रूप हमें दृष्टिगत होता है, जिसका स्पष्ट विवरण अगले पृष्ठों में किया जाएगा।

3. २ तॉय अध्याय

आधुनिक हिन्दी कालेज का स्वरूप - व्यक्ति चेतना के सन्दर्भ में

"कविता

शब्दों की अदालत में

अपराधियों के कटघरे में खड़े एक निर्दोश आदमी का
हलफनाम है "10

कवि धूमिल के ये शब्द साहित्यिक धरातल पर कविता की गरिमा को स्पष्ट करते हैं। वास्तव में कवि-कर्म को एक जटिल और संश्लिष्ट प्रक्रिया माना जाता है। काव्य शास्त्रियों के अनुसार कविता को भावना, कल्पना, विवेक और संवेदनात्मक उद्देश्य से समन्वित एक रचना प्रक्रिया माना जाता है। आधुनिक काल में काव्य का स्वरूप बदला है, आज रचना प्रक्रिया का ढाँचा मात्र इन्हीं मूल तत्वों से निर्मित नहीं हो सकता, बल्कि इन तत्वों के साथ-साथ रचनाकार को उत्कट जीवनानुभव का भी होना अनिवार्य है। जो बाद में, मुक्तिबोध के अनुसार, रचनाकार के व्यक्तित्व का अंश बन जाता है - "बाह्य से प्राप्त ज्ञान और भाव लेखक के अंतर्व्यक्तित्व में ऐसे घुल-मिल जाते हैं कि वे उसके निजी हो जाते हैं।"11 अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रचना प्रक्रिया एक मानसिक व्यापार है, जिसमें व्यक्ति को प्रेरित और प्रोत्साहित करने में, उसके जीवन और जगत् से प्राप्त अनुभव का अनुपम स्थान है।

कविता करने के लिए अनुभव मात्र की जरूरत भी काफी नहीं है, बल्कि कवि को भाषा पर पूर्णाधिकार होना चाहिए ताकि वह अपनी प्रत्येक अनुभूति को अभिव्यक्ति दे सके। इस संबंध में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि कवि में - "साधनाजन् शिल्प और चातुर्य भी होना चाहिए जिससे वह भावों को ठीक उसी नमी या गर्मी से, रंगीनी व सादगी से अभिव्यक्त कर सके, जिसके साथ वे बाहर आना चाहते हैं। टेलीफोन के एक सिरे पर हम जिस प्रकार बोलते हैं, उसके दूसरे सिरे पर वैसा ही सुना जाता है। कविता भी दो हृदयों के बीच पहुँच जाएँ, तभी पाठक को उस आनन्द की अनुभूति होती है, जिसका अनुभव कवि ने किया है।"12

कविता में कवि अपने और अपने समाज के ऐसे अनुभवों को पेश कर सकता है जिन्हें आज तक कविता का विषय नहीं समझा गया था। हिन्दी साहित्य के इतिहास में कविता में इस प्रकार के नए दृष्टिकोण प्रथमतः भारतेन्दु युग की कविता में दृष्टिगत होते

हैं। भारतेन्दु युग के कवियों की विशेषता यह है कि इन्होंने एक ओर भक्ति और रीति की कविता लिख कर तत्समय तक प्रचलित परंपरा का निर्वाह किया है, वहीं दूसरी ओर युगीन यथार्थ को भी अपनी कविता में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है। द्विवेदी युग में आकर कवियों की यह प्रवृत्ति अधिक मुखर आयी।

द्विवेदी युग के कवियों ने यह अच्छी तरह से महसूस किया कि कविता के लिए कोई अनुचित विषय नहीं है। उन्होंने यह भी जान लिया कि कविता की सार्थकता कवि के उस मानवतावादी दृष्टि में है जिससे प्रेरित होकर वह अपने समय और समाज को देखता है और कविता में उसे पेश करता है। इस युग में हिन्दी कविता को मुक्त वातावरण में सांस लेने का अवसर मिला। कविता में मुक्ति की यह अनुभूति आगे चलकर छायावादी कविता की पहचान बन गयी।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग के बाद छायावाद की बारी आती है। भारतेन्दु युग की ही तरह छायावाद की भी एक विशेषता है। द्विवेदी युग में जिस साधारण व्यक्ति को कविता का विषय बनाकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की गयी थी, उसी साधारण को गरिमायुक्त व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने में छायावादी कवि सफल रहे। छायावादी काव्य में ही पहली बार 'व्यक्ति' की वैयक्तिक अनुभूतियों को महत्त्व दिया गया था। व्यक्ति-जीवन को अधिक निकट से देखने का प्रयास भी इस काल के कवियों में देखने को मिलता है।

जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, इन चारों कवियों को छायावाद के चार स्तम्भ माना जाता है। व्यक्ति-मानव के अंकन में इन चारों का सफल योगदान रहा। कवि पंत ने व्यक्ति-मानव को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ माना है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला मानव की अपरिमित शक्ति पर विश्वास करते हैं और उसे 'ब्रह्म' की संज्ञा से भी विभूषित करते हैं -

"तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्

है नश्वर यह दीन भाव,

कायरता, कामपरता,

ब्रह्म हो तुम

पद-रज-भर भी है नहीं पूरा यह विश्वभार ।" ¹³

वैसे भी प्रत्येक कवि की कविता में, चाहे वह किसी भी युग की हो, वैयक्तिक चेतना का समावेश होता है, किन्तु छायावाद के संबंध में यह कहा जा सकता है कि इस काव्य में व्यक्ति-चेतना का जो स्वरूप मिलता है, वह छायावादी काव्य की ही तरह अस्पष्ट है। वास्तव में यह चेतना वैयक्तिक होते हुए भी कवि-व्यक्तित्व में खोई हुई थी।

छायावादोत्तर कविता को वैयक्तिक चेतना की कविता कहा जाता है। इस कविता में छायावाद की काल्पनिकता तथा आवरणप्रियता का अभाव है और स्पष्टता, प्रगाढ़ता, ईमानदारी व तत्कालीनता का प्रभाव है। विद्वानों के अनुसार, जब हिन्दी कविता ने छायावादी स्वप्निलता, प्राच्छन्न रहस्यवाद में लिपटी श्रृंगार भावना से, दुरूहता से मुक्त होना चाहा तभी से वैयक्तिक कविता का जन्म हुआ। इस वैयक्तिक चेतना के कवियों के बारे में डॉ० रमाकांत शर्मा लिखते हैं - "इन कवियों की चेतना वैयक्तिक थी, परन्तु सामाजिक नव-निर्माण की भावना भी इनकी कृतियों में मिलती है। ईश्वर तथा धार्मिक विश्वासों के प्रति घृणा, प्रतिक्रियावादी शक्तियों और उदासीनता के प्रति विद्रोह की भावना बड़ी स्वस्थता से व्यक्त हुई है।"¹⁴

प्रवृत्तिगत उपलब्धियों को देखा जाय तो नियतिवाद एवं जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति आस्था, ईश्वर तथा धर्म के बाह्याडंबरों के प्रति विद्रोह और समष्टि व व्यक्ति का संघर्ष वैयक्तिक चेतना की काव्य-धारा के आयाम हैं। परिवेशगत वेदना, अनास्था एवं उदासीनता से नियतिवाद पर विश्वास करने को विवश व्यक्ति की मानसिकता कवि श्री भगवती चरण वर्मा के शब्दों में इस तरह प्रकट होती है -

"वासनाओं का यह संसार
भयानक भ्रम का है बंधन,
और इच्छाओं का मंडल
आदि से अन्त रुदन है रुदन
एक अनियंत्रित हाहाकार --
इसी को कहते हैं जीवन ।"¹⁵

वैयक्तिक चेतना के कवियों का भावबोध भी शुद्ध वैयक्तिक है। इस काव्यधारा के कवियों ने सामाजिक यथार्थ या समष्टिगत यथार्थ, मानवतावादी विचारधारा एवं राष्ट्र को भी छुआ है फिर भी इस कविता का आधारभूत दर्शन व्यक्तिवाद है।

वैयक्तिक चेतना की काव्यधारा के बाद हिन्दी कविता में सामाजिक यथार्थ का स्वर मुखर होता है । इस सामाजिक यथार्थ की काव्यधारा की कविता को प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है, जिसका विकसित रूप हमें नई कविता में दृष्टिगत होता है । मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण प्रगतिवादी काव्य में प्रायः जनवादी विचारों की अधिकता पायी जाती है । इस काव्यधारा में पूंजीवाद और सामन्तवाद के विरुद्ध आवाज उठायी गयी है । पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की आलोचना करने वाले भारत भूषण अग्रवाल मानते हैं कि पूंजी की उत्पत्ति समाज से हुई है और वर्ग-भेद ही सभी परिस्थितियों का पिता है -

"परिस्थितियों का पिता है वर्ग और समाज पूंजी का
और, मेरे विकल मन की सभी सीमाएँ
वहीं से निःसृत हुई हैं ।" ¹⁶

फिर भी नव-निर्माण के प्रति प्रगतिवादी कवियों की आस्था नहीं टूटी । -

"पर निश्चय है, दृढ़ निश्चय है इतना --
दिनकर आँगा लपटों से लिपटा
भस्मीभूत करेगा कोहरा कण में
प्यारी धरती को स्वाधीन करेगा ।" ¹⁷

प्रगतिवादी कवि अपनी कविता-कला को अभिव्यक्ति का साध्य मान कर नहीं, बल्कि अभिव्यक्ति का साधन मानकर चलते हैं । इसीलिए इनकी कविताओं में आम आदमी का वास्तविक रूप बिना किसी सजावट के मिलता है । फुटपाथों पर जीवन बिताने वाले एक साधारण एवं मेहनतकश व्यक्ति भी इनके लिए कथावस्तु बन जाता है -

"रक्षित है लाज लंगोटी पर
है कण्ठ बोलते घरर घरर
आ रही असह्य दुर्गन्ध पसीने
और चीथड़ों से झर-झर ।" ¹⁸

सामाजिक यथार्थ की काव्यधारा होने के कारण प्रगतिवादी काव्यधारा में सामाजिक

प्रार्थ का तो अंकन मिलता है, किन्तु वैयक्तिक यथार्थ का इसमें अभाव-सा रह गया, इसकी पूर्ति परवर्ती काव्यधारा, अर्थात् प्रयोगवादी काव्यधारा में की गयी। छायावादी कविता, प्रगतिवादी कविता और प्रयोगवादी कविता इन तीनों काव्यधाराओं में चित्रित व्यक्ति का स्वरूप-विश्लेषण करते हुए डॉ. रमाकान्त शर्मा लिखते हैं - " छायावादी कवि नृष्य(व्यक्ति) को देवता बनाने में तल्लीन रहा, प्रगतिवादी कवि उसे ऐतिहासिक नृधर्म में प्राणी की संज्ञा के निकट ले जाने के लिए तत्पर हुआ। प्रयोगवादी कवि नृष्य(व्यक्ति) के चेतन व्यक्तित्व को स्वीकार करता है।"¹⁹

प्रयोगवादी काव्यधारा का आरम्भ 1943 ई० में प्रकाशित 'तार सप्तक' नामक काव्य-संग्रह से माना जाता है। वास्तव में यह काव्यधारा निराला से ही शुरू हो जाती है, जो इसे आगे चलाने का श्रेय अज्ञेय को मिलता है। प्रयोगवादी कवियों ने परंपरानुमोदित विधियों का विरोध किया और उन्होंने कविता में भी नए-नए प्रयोगों का आश्रय लिया। भारतीय विचारधारा से प्रभावित होने के कारण इस कविता में यौन सम्बन्धी प्रतीकों की अधिकता पायी जाती है। अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों की अधिकता के कारण प्रयोगवादी कवियों ने वैयक्तिक सत्ता एवं व्यक्ति के अहं को अधिक प्रमुखता दी है -

"विश्व के इस रेत-वन पर

मैं अहं का मेघ हूँ

* * *

क्या नहीं तुम देखते

आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ।

अहं पर ये अश्रु किसके ?

हुंकार से मैं घाटियों की गोद को भरता रहूँगा

जब तक इस प्रश्न का उत्तर न होगा

क्या ?

मेरी अहं की मीनार की ही नींव में

इस (एक ?) पत्थर हिचकियाँ है तो (ले ?) रहा ?"²⁰

प्रयोगवादी कविता अपनी ऐहिकता के कारण विशिष्ट है। हिन्दी कविता में प्रयोगवाद और नई कविता को लेकर पर्याप्त चर्चा रही है। कुछ विद्वानों ने दोनों को लग-अलग माना है और कुछ ने दोनों को एक ही समझा है। इस संदर्भ में डॉ० विन

कुमार मिश्र का विवरण काफी स्पष्ट है - "प्रयोगवाद की परिधि साहित्य तक ही सीमित रही, उसने छायावाद की अतिशय रोमानी वायवी प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह करते हुए मूर्त एवं यथार्थ सौन्दर्यबोध का आग्रह किया। समय के साथ यह प्रवृत्ति ज्यों-ज्यों कुछ अधिक निश्चित रूप धारण करती गई, त्यों-त्यों प्रयोग का मोह कम और अनुभूति की प्राप्ति का आग्रह बढ़ता गया और सन् 1950 के बाद इसके लिए 'प्रयोगवाद' के स्थान पर 'नई कविता' नाम अधिक सार्थक माना गया। नए कवियों ने दावा किया कि अपने परिवेश के यथार्थ-बोध और भोगे हुए जीवन क्षण की सान्द्रित अभिव्यक्ति कविता की चरम सिद्धि है और इसका सच्चा रूप 'नई कविता' में ही मिलता है -- मिल सकता है। वर्तमान के द्वन्द्व को -- उसके तिर्यक विषाद और विसंगति को -- समग्रता में भोगकर, शब्द से अतीत उसके सम्पूर्ण अर्थ को अभिव्यक्त करना नई कविता का लक्ष्य है।" ²¹ अतः नई कविता को प्रयोगवादी कविता की ही अगली सीढ़ी माना जा सकता है।

यद्यपि प्रयोगवाद और नई कविता के बीच रेखा खींचना आसान नहीं है, बल्कि दोनों के बीच कतिपय असमानताएँ हैं, जिनके सहारे दोनों की सीमा निर्धारित करने का काम सरल हो सकता है। नई कविता उस व्यक्तिवाद का विरोध करती है जिसे प्रयोगवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति माना जाता है। नई कविता के कवि समसामयिक जीवन के प्रति काफी जागरूक रहे। प्रयोगवादी काव्य में अनास्था, शंका, कुंठा आदि प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। नई कविता में ये प्रवृत्तियाँ कम होकर आस्था तथा आत्मविश्वास की प्रमुखता झलकती है। व्यक्ति-यथार्थ का चित्रण और उसके अहं का साक्षात्कार भी नई कविता की एक प्रवृत्ति रही। 'क्षणवाद' को नई कविता में काफी महत्व मिला है।

"मैं प्रस्तुत हूँ

इन कई दिनों के चिन्तन और संघर्षवाद

यह क्षण जो अब आ पाया है,

उसमें बँधकर मैं प्रस्तुत हूँ

तुमसे सब कुछ कह देने को।" ²²

'लघुमानव' की परिकल्पना भी नये कवियों की ही विशेषता मानी जाती है। अधिक लोकप्रिय होने के बाद भी नई कविता को अपनी दुरुहता के कारण कई अलोचनाओं का सामना करना पड़ा। नैतिक मूल्यों की खोज में स्वाभाविकता को खो बैठे

नये कवियों की मानसिकता भी अलोचकों की नजरों से बच न पायी।

नई कविता के विरोध में कई काव्य-आंदोलन चलाये गये। डॉ० जगदीश गुप्त ने इन आंदोलनों की एक सूची भी बनायी, जिसमें चालीस से अधिक नाम हैं, यथा - सनातन सूर्योदयी कवता, अपरम्परावादी कविता, सीमान्तक कविता, युयुत्सावादी कविता, अकविता, रंष्ट्रविद्धा, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, क्षुत्कार कविता.... आदि। अपनी सूची की ओर संकेत करते हुए डॉ० गुप्त ने स्वयं लिखा है - "मैं क्या, इस बात का कोई भी दावा नहीं कर सकता, कि यह सूची पूरी हो गयी है, क्योंकि यह असंभव नहीं है, कि इसके छपते-छपते, लोगों तक पहुंचते-पहुंचते दो-चार नाम वर्षा मेघवत् और पैदा हो जाएँ।"²³

अतः नई कविता के बाद की कविता को किसी एक नाम से विभूषित करना संभव की बात नहीं है। इसलिए विद्वानों ने नई कविता के बाद की कविता के नामकरण के लिए कालवाचकों का आश्रय लिया, जैसे ; सातवें दशक की कविता, आठवें दशक की कविता, नवें दशक की कविता, दसवें दशक की कविता, शताब्दी की कविता और इक्कीसवीं शताब्दी की कविता आदि।

सातवें दशक की कविता, जिसे 'अकविता' के नाम से भी जाना जाता है, में भोगवाद, राजनैतिक व आर्थिक विसंगति का चित्रण मिलता है। इस कविताओं में निर्लक्ष्यता या उद्देश्यहीनता अधिक पायी जाती है। विद्वानों का मानना है कि इस दशक में सच्ची कविता का अभाव है, पर व्यक्ति-मानव की आत्मविभ्रमता एवं मिथ्यादंभ का अंकन इस युग की कविता की ही एक विशेषता मानी जा सकती है। व्यक्ति-मानव की आत्मविभ्रमता का चित्रण सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के शब्दों में इस तरह प्रकट होती है कि-

"कभी-कभी, पैरों की आवाज पूछती है

किधर जा रहे हैं हम ?

अपने आप से डर लगने लगता है।"²⁴

आठवें दशक के कवि अपने वर्तमान जीवन की विसंगतियों, युगीन परिस्थितियों तथा राजनीतिज्ञों के षडयंत्रों से क्षुब्ध थे। उन्होंने अपने समय की शोषण प्रवृत्ति की कटु आलोचना की। अतः इस दशक में आकर कवियों ने 'व्यक्ति' को पुनः संवेदनशीलता के

धरातल पर जोड़ने का प्रयास किया -

"कितना अच्छा था छायावादी
 एक दुःख को लेकर वह गान देता था
 कितना कुशल था प्रगतिवादी
 हर दुःख का कारण पहचान लेता था
 कितना महान था गीतकार
 जो दुःख के मारे अपनी जान लेता था
 कितना अकेला हूँ मैं इस समाज में
 जहाँ मरता है सदा एक मतदाता ।" ²⁵

व्यक्ति-यथार्थ, उसके विद्रोह और आक्रोश की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए इस दशक के कवियों ने व्यंग्य का सहारा लिया था। वर्तमान यांत्रिक जीवन में विषमता भरी जिन्दगी जीते हुए कविता से रस आनंद की अपेक्षा करने वाले व्यक्ति पर व्यंग्य करते हुए कवि दूधनाथसिंह लिखते हैं -

"यह वो कविता नहीं है
 यह केवल खून-सनी चमड़ी उतार लेने
 की तरह है
 यह कोई रस नहीं
 जहर है.....जहर ।
 आह मेरे लोगों ! मैं तुम्हें
 अमृत के घूँट कहाँ से पिला दूँ ?" ²⁶

इस दशक के कवियों की एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने सम्पूर्ण परिवेश को अपने काव्य में समेटने की चेष्टा की है ।

विज्ञान के बढ़ते हुए चरण, नए-नए अनुसंधान, कम्प्यूटर का आगमन, बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था ने कवियों को नए सिरे से सोचने को बाध्य किया। नौवें दशक की कविता में वैज्ञानिकता के परिप्रेक्ष्य में व्याप्त बौद्धिकता से ग्रस्त व्यक्ति-जीवन का अंकन मिलता है। टूटते हुए परिवार, पथभ्रष्ट व्यक्ति, अभावों की जिन्दगी इस काव्यधारा में स्पष्ट परिलक्षित होती है। परिवर्तित परिवेश में भटकते समाज को निराशा से उभारने का

प्रयास करते हुए कवि देशराज पथिक लिखते हैं -

"यदि अंधियारा दूर भगाने
दीपों की माला सजानी है
हरी-भरी इस धरती पर
खुशहाली की पौध उगानी है
पहले अपने मन की कालिख धोने
अन्तर की जोत जगाओ
मेड़-मेड़ गलियारे-गलियारे में
जीवन का संगीत सुनाओ,
मेरा कवि मस्ताना कवि है
अंधकार को पीता आया
सौ बार गिरा, सौ बार उठा
फिर भी यह जीता आया ।"²⁷

वास्तव में सातवें और आठवें दशक की कविता में जो रूपात्मक अंतर देखने को मिलता है वह आठवें, नौवें और दसवें दशक की कविता में दृष्टिगत नहीं होता । क्योंकि आधुनिक परिवेश इतना बिखरा हुआ है कि उसे किसी एक प्रवृत्ति विशेषता से बांधना संभव की बात नहीं है । इसीलिए आधुनिक युगबोध का अंकन करते हुए नीरज ठाकुर लिखते हैं -

"मेरे एक दोस्त ने
काफी दिनों पहले मुझे बताया
कि आधुनिक युगबोध से
परिचित होने के लिए
एक अदद दैनिक अखबार का
पढ़ना जरूरी है
तब से लेकर आज तक
रोजाना मेरे घर की चौखट पर
एक दलाल की तरह आता है अखबार
और मुखपृष्ठ की खबरों को
कमसिन लडकियों की तरह

मेरे सामने एक के बाद एक
बिछाता चला जाता है ।²⁸

नौवें और दसवें दशक की कविता में विषयगत व्यापकता अधिक रही। इस काल में हिन्दी कवियों की संख्या बढ़ी और सैकड़ों काव्य-संग्रह छपे। अब कविता को कल्पना की उड़ान संभव नहीं है। उसकी प्रकृति में भी परिवर्तन आया। इस समय के कवियों के लिए जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं रहा जो काव्य के लिए त्याज्य हो। इन्होंने आम व्यक्ति के दुख-दर्द, उसकी समस्याओं और आशाओं को नए-नए तरीकों से अपनी कविता में प्रस्तुत किया। किसी ने सपाटबयानी से काम लिया है, किसी ने फैटसी की रचना की है। प्रायः अधिकांश कवियों ने व्यंग्य का सहारा लिया। यह व्यंग्य कहीं अमीरों पर किया गया, कहीं नौकरशाही पर, कहीं राजनेताओं और कहीं अवसरवादियों पर किया गया -

"श्वेत श्याम रतनार अँखियाँ निहार के,
मिण्ड्रीलेट प्रभुओं की पग-धूर झार के,
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के,
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के,
आए दिन बहार के ।"²⁹

यथार्थ के चित्रण में इन कवियों का अधिक योगदान रहा। इन कवियों ने नग्न यथार्थ और अश्लील यथार्थ को भी प्रमुखता दी, लेकिन ऐसे कवियों की संख्या कम है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कवि परम्परागत श्लीलता और झूठी नैतिकता को स्वीकारने को तैयार नहीं है। अतः इस काल की कविता में जीवन की सर्वांगीण अभिव्यक्ति मिलती है। अद्यतन कविता भी इसी से सम्बद्ध है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के संपूर्ण अवलोकन पर यह ज्ञात होता है कि सभी कवियों ने अपने अन्दर स्थित व्यक्ति को प्रकाश में लाने का सफल प्रयास किया और एक व्यक्ति होने के नाते इन्होंने आम-व्यक्ति की उपेक्षा करने का साहस नहीं किया। आम व्यक्ति के विविध रूप इनके काव्य में सजीव रूप से देखने को मिलते हैं। "आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्ति" शीर्षक के अंतर्गत 'व्यक्ति-जीवन' के समग्र अंकन में किसी भी कवि की उपेक्षा नहीं की जा सकती, पर सीमित परियोजना के अंतर्गत सभी कवियों को समाहित करना भी संभव की बात नहीं है। अतः यथासंभव अधिकतर कवियों को समेटकर चलने का प्रयास किया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय

व्यक्ति-चेतना का स्वरूप - युगीन सन्दर्भ में

- 4.1 सामाजिक चेतना**
- 4.2 आर्थिक चेतना**
- 4.3 राजनीतिक चेतना**
- 4.4 सांस्कृतिक व मूल्यगत चेतना**
- 4.5 धार्मिक चेतना**

4.1 सामाजिक चेतना :

आधुनिकता के अभ्युदय के पूर्व भारतीय समाज में मनुष्य का 'व्यक्ति' के रूप में स्थान नहीं था। समाज में कतिपय इस प्रकार के विधान बने हुए थे कि जन्म लेते ही व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का भावी रूप निर्णीत हो जाता था। जन्म के साथ ही जाति, परम्पराएँ, समाज, धर्म आदि विरासत में मिलते थे। इस आबद्ध जीवन में परंपरा से पृथक होकर विचारने का मानव को अवकाश ही नहीं था और न इसकी आवश्यकता ही समझी जाती थी, किन्तु आधुनिक जीवन के प्रवाह में व्यक्ति के सामाजिक बन्धन शिथिल हुए और व्यक्तित्व-विकास के नवीन अवसर उपलब्ध होने लगे। स्वतंत्र चिंतन ने व्यक्ति को नई दिशाएँ दीं ।

आधुनिक युग में परिवर्तित परिवेश ने व्यक्ति-जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया। औद्योगीकरण और विज्ञान की नयी-नयी उपलब्धियों ने व्यक्ति को अपने अस्तित्व के प्रति मोह जगाया। दूसरी ओर भ्रष्टाचार, महँगाई, अन्धकारपूर्ण भविष्य, जीवन में सुख-सुविधाओं का अभाव, राजनीतिज्ञों की अनैतिकता और आदर्शहीनता, स्वार्थहीनता, बेकारी आदि से युक्त देश की विसंगतिपूर्ण स्थिति व्यक्ति को अपने परिवेश के प्रति सावधानी से रहने के लिए बाध्य करती है। देश की वर्तमान स्थिति के बारे में चर्चा करते समय कवि धूमिल के इस अनुभव की उपेक्षा नहीं की जा सकती -

"अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है,
मैंने एक-एक को परख लिया है
मैंने हरेक को आवाज दी है
हरेक का दरवाजा खटखटाया है
मगर बेकार।
मैंने जिसकी पूँछ उठाई है उसको मादा पाया है
वे सबके सब तिजोरियों के दुभाषिये हैं ।
वे वकील हैं । वे वैज्ञानिक हैं । अध्यापक हैं ।
नेता हैं । दार्शनिक हैं । लेखक हैं ।

कवि हैं । कलाकार हैं । यानी कि
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का संयुक्त परिवार है ।"³⁰

देश की वर्तमान स्थिति ने व्यक्ति को अतीत के प्रति मोहभंग किया । वह महसूस करने लगा कि अतीत की पोशाक वर्तमान के शरीर के लिए ठीक नहीं है -

"ऐसा हुआ मैं इतिहास में गया
मुझे वहाँ एक बूढ़ा मिला
उसने उल्टा करके अपना पाजामा सिला
फिर मुझसे कहा यह नया है
मैं ने नहीं माना....." ³¹

औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति-जीवन में समय का अभाव होने लगा । उसे जीवन में व्यस्तता महसूस होने लगी है । दूसरी ओर देश में बढ़ती महानगरीय सभ्यता ने व्यक्तियों को एक दूसरे के प्रति उदासीन बना दिया । जिससे समाज में अजनबीपन (एनस्ट्रेंजमेंट) बढ़ता जा रहा है । अजनबीपन वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने ही परिचित लोगों और वस्तुओं के साथ अपनी पहचान और संबंध कायम नहीं रख पाता । इस अवस्था में व्यक्ति दूसरों को अपना नहीं, गैर समझने लगता है । वर्तमान समाज में अजनबीपन का विवरण मंगलेश डबराल के शब्दों में स्पष्ट मिलता है -

"बहुत बड़े इस शहर में
हमें भी मिली छोटी सी एक जगह
थोड़ी सी हवा एक बिस्तर
मुसीबतें याद रखने के लिए
एक डायरी

* * *

सुबह उठकर सामने से आते
आदमी से पूछा अच्छा तो आप भी है
इस शहर में ।"³²

महानगरीय सभ्यता और मशीनीकरण की वजह से आज व्यक्ति-जीवन में बौद्धिकता का प्रभाव बढ़ने लगा । समाज में बढ़ती बौद्धिकता और ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न आविष्कारों से व्यक्ति जीवन में तर्क को प्रमुखता मिलने लगी । तर्क की कसौटी पर उसे समाज के प्रतिष्ठित व श्रेष्ठ मूल्य निरर्थक प्रतीत होने लगे । धीरे-धीरे परंपरागत सामाजिक मान्यताओं और धारणाओं के प्रति व्यक्ति की आस्था टूटने लगी है । परिणामतः सामाजिक जीवन में गतिशीलता आयी है ।

परिवेशजन्य परिस्थितियों में पलनेवाले आज के व्यक्ति को अपने ऊपर किसी परंपरा या पूर्व निर्धारित मान्यता या मूल्य को थोपा जाना असह्य महसूस होने लगा । परंपरागत मान्यताएँ आज उसके लिए निरर्थक प्रतीक होने लगे । इस बात का प्रतीकात्मक रूप **कुमार विक्रम** की इस कविता में दृष्टिगत होता है -

"आत्म रक्षा के समूचे शस्त्र
जो मुझको विरासत में मिले थे
पुराने पड़ गये हैं, कुण्ठित हो चुके हैं -" ³³

वास्तव में मूल्य-परिवर्तन तो एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है । युगीन परिस्थितियों के अनुरूप ही सामाजिक संबंधों में भी परिवर्तन होते रहते हैं और किसी समय अत्यंत सार्थक लगनेवाले मूल्य धीरे-धीरे अर्थहीन होने लगते हैं । आज के व्यक्ति के सामने मूल्यों परिवर्तन अपने आप में एक ज्वलन्त समस्या है । जो मुख्यरूप से नई पीढ़ी के समक्ष है । शिक्षा, नये विचारों के प्रचार-प्रसार से लगातार बदलते परिवेश में नई पीढ़ी यह अनुभव करने लगी है कि परम्परागत मूल्य और आदर्श उसकी समस्याओं का समाधान कर सकने में असमर्थ हैं । वह परंपरागत मूल्यों को टूटे पंखों का ताज महसूस करता है -

"टूटे पंखों का ताज सिर पर पहने
बुझी छायाएँ चमगादड़ों-सी
बाँहों में लटकाए
पीठ पर मुरदों का बोझ लादे
भटक रहा है रात की बीरान गहराइयों में
कहाँ के लिए...किसके लिए..." ³⁴

आज व्यक्ति परम्परागत मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों को आत्मसात् करने लगा है और व्यक्ति परंपरा से पृथक् होकर अपने अस्तित्व का निरूपण करना चाहता है। जिसका प्रभाव उसके पारिवारिक संबंधों पर पड़ा है। आज परिवारों का स्वरूप व्यक्तिगत रुचियों के आधार पर निर्मित होने लगा। इसकी व्याख्या करते हुए डॉ. शिव प्रसाद सिंह ने लिखा है - "कहने को तो घर या परिवार समाज की इकाई है, उसी का अविच्छिन्न हिस्सा, पर वह हिस्सा आज मुख्य अंग का एक समन्वित भाग न होकर धारा के बीच का द्वीप बन गया।" ³⁶

अब विवाह संबंधी परंपरागत मान्यताएँ टूटने लगीं। आज विवाह पति-पत्नी की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र रह गया है और इसे एक सामाजिक समझौता के रूप में समझा जा रहा है। वैवाहिक जीवन के प्रति आज का व्यक्ति अनासक्त है। पारिवारिक संबंध को नियति मानकर चलने को वह तैयार नहीं है। क्योंकि वह उसे बोझ समझकर उससे छुटकारा पाना चाहता है -

"अब ऐसे में रहते चले जाना
महज मूर्खता है
जो उसे बर्दाश्त नहीं।" ³⁶

नारी संबंधी, परंपरागत मान्यताएँ भी शिथिल हो गयीं। पहले उसे भोग्या माना जाता था, जड़ वस्तु माना जाता था। लेकिन वह अचेतन प्राणी नहीं है, बल्कि सचेतन प्राणी है। पुरुष के साथ उसका विश्व में समभाग है -

"नारी मात्र भोग्या नहीं, भोक्ता भी
जड़ वह नहीं, है चेतन भी
विश्व के विधान में उसका समभाग है।" ³⁷

आज की नारी अपने अस्तित्व के प्रति ध्यान दे रही है। परिवर्तित परिवेश में पारंपरिक सामाजिक बन्धनों का वह विरोध करती है। वैवाहिक जीवन में भी वह स्वच्छन्दता का अनुभव कर रही है। जिससे आज दाम्पत्य में भी एकनिष्ठता की मांग अनुचित प्रतीत होने लगी है। अच्छे पति-पत्नी को एक दूसरे आचरण के बारे में मौन धारण करना चाहिए। आज नारी अपने पति पर निर्भर नहीं, पर अपने अलग अस्तित्व के प्रति जागरूक है।

आज व्यक्ति के लिए वैवाहिक संबंधों के निर्धारण में अपने पूर्वजों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं । प्रेम विवाहों की संख्या बढ़ रही है । प्रेम में भी बौद्धिकता के कारण भावुकता लुप्त होने लगी है । प्रेम का संबंध मन से कम और शरीर से अधिक प्रतीत होने लगा है जिस पर फ्रायडीयन विचारधारा का अधिक प्रभाव है ।

समाज का यह परिवर्तित रूप आधुनिक हिन्दी कविता में स्पष्ट परिलक्षित होता है । एक व्यक्ति होने के नाते परिवेशगत सन्दर्भ में व्यक्ति-जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने में यह कवि सफल हुए हैं । इन्होंने व्यक्ति-जीवन को निकट से देखने का प्रयास किया, जिससे इनकी कविताओं में व्यक्ति का वह रूप भी मिलता है जिसे अब तक नितांत वैयक्तिक माना जाता था ।

4.2 आर्थिक चेतना :

आज के युग में अर्थ जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व बन गया है । आर्थिक आधार की दृष्टि से कार्ल मार्क्स ने समाज के दो वर्ग स्वीकार किए हैं - एक बुर्जुआ वर्ग और दूसरा सर्वहारा वर्ग । बुर्जुवा वर्ग से तात्पर्य है पूंजीपति वर्ग है जिसके पास धन की अधिकता रहती है और वह उत्पादन का स्वामी बनकर मजदूरों को रोजगार देता है । सर्वहारा वर्ग मजदूर वर्ग है जिनके पास उत्पादन-साधन नहीं रहते और वे अपने जीवनयापन के लिए काम करते हैं । बुर्जुआ वर्ग को शोषक वर्ग कहा जाता है और सर्वहारा वर्ग शोषित । इन दोनों वर्गों के बीच एक ऐसा वर्ग भी है, जिसके पास न बुर्जुआ वर्ग की तरह अधिक धन नहीं रहता और सर्वहारा वर्ग की तरह वह मेहनत का काम कर सकता है । इस वर्ग को मध्य वर्ग के नाम से जाना जाता है । इस वर्ग की ओर इशारा करते हुए डॉ० जनेश्वर वर्मा लिखते हैं - "वास्तव में यह मध्य वर्ग कोई स्वतंत्र वर्ग नहीं है, क्योंकि इस वर्ग के कुछ लोगों को, जिन्हें किसी प्रकार का धनोपार्जन का अवसर मिल जाता है, सम्पत्तिशील बनकर शोषक वर्ग में मिल जाता है और अधिकांश व्यक्ति गरीबी और डेढ़ोख गारी का शिकार बनकर सर्वहारा वर्ग में मिल जाते हैं ।"³⁸ अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि आर्थिक दृष्टि से समाज के दो ही वर्ग के व्यक्ति मिलते हैं - एक बुर्जुआ वर्ग या पूंजीपति वर्ग के व्यक्ति और दूसरा सर्वहारा वर्ग या श्रमिक वर्ग के व्यक्ति । आर्थिक रूप से व्यक्ति-चेतना का अंकन करते समय समाज के उन व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जिनकी संख्या अधिक है ।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था की विशेषता यह है कि एक ओर उसने आर्थिक रूप से प्रगति की और दूसरी ओर देश में बेरोजगारी और निर्धरता में लगातार वृद्धि होती जा रही है । आधुनिक काल में विज्ञान के विकास के कारण अर्थ-व्यवस्था को नए-नए मूल्य प्रदान हुए हैं । आर्थिक दबाव के कारण प्रेम, स्नेह, करुणा, दया, सेवा जैसे भावात्मक मूल्यों में दिखावा आ गया है और कृत्रिमता व्याप्त हो गई है । जिसकी वजह से परिवार में भी विद्रोह का स्वर सुनने को मिल रहा है और आज का व्यक्ति पूर्वजों के सम्बन्धों को विवशता के साथ ढोने का इच्छुक नहीं है -

"आज तुम चाहते हो कि मैं
तुम्हारे लिए भी जो अपरिचित थे
उन्हीं पूर्वजों के भार को ढोता चलूँ
ढोता चलूँ और जब हार बैठूँ
तो उसे अपने पुत्र के कन्धे पर डाल दूँ
और वह भी सिर्फ इसलिए
कि तुमने मुझे जन्मा था और मैं ने उसे ।
नहीं, यह मुझसे नहीं होगा
न आज, न कल, न परसों
यह मुझसे नहीं होगा ।"³⁹

आर्थिक विपन्नता के कारण आज व्यक्ति-जीवन में वात्सल्य का भावानुकूल स्वरूप कुंठित हो गया । अब घर में अधिक शिशुओं का जन्म भार-स्वरूप प्रतीत हो रहा है -

"बेटे के जन्म ने भी
मेरे सामने
एक पेट के लिए प्रश्नवाचक
उपस्थित कर दिया है ।"⁴⁰

परिवारिक जीवन में आर्थिक विपन्नता को दूर करने के लिए आम आदमी को अब अधिक संघर्ष करने पर विवश होना पड़ा रहा है और दूसरी ओर महीने भर मेहनत करने के बाद भी वह अभावपूर्ण जीवन जीने के लिए अभिशप्त है । अब नारी को भी नौकरी करने के लिए घर से बाहर निकलना पड़ा और उसे अन्य पुरुषों के साथ काम करने का

अवसर मिला। यद्यपि इससे नारी को अपने अस्तित्व का बोध हुआ और उसमें आत्मगौरव व स्वाभिमान के भावों का विकास होने लगा, पर नारी की इस स्थिति का प्रभाव समाज में पारिवारिक संबंधों पर पड़ा।

आज अर्थ ही सभी प्रकार के संबंधों का नियामक तत्व हो गया। अभावों की विभीषिका में आज के व्यक्ति के लिए प्रेम संबंध भी आदत-सी जान पड़ते हैं -

"पत्नी का उदास और पीला चेहरा मुझे आदत-सा झाँकता है
उसकी फटी हुई साड़ी से झाँकती हुई पीठ पर खिड़की से बाहर
पेड़ की दहशत चमक रही है।"⁴¹

वैयक्तिक आवश्यकताओं के महत्त्व, पीढ़ी संघर्ष, वैचारिक मतभेद, पद्धति-समन्वय व सामंजस्य का अभाव ने संयुक्त परिवार पद्धति पर भयंकर प्रहार किया है। डॉ० ओमानन्द सारस्वत की कलम से नई पीढ़ी बोलती है -

"बूढ़ा हो गया है साला खूंसट
सह-कुटुम्ब की बात करता है
बारहवीं सदी की।"⁴²

देश में बढ़ती जनसंख्या और सीमित संसाधनों ने रोजगार अवसरों को कम कर दिया है। रोजगार कम होने की बात को लेकर आम आदमी का आक्रोश राजीव सक्सेना के शब्दों में स्पष्ट झलकता है -

"हम सर्वथा स्वतंत्र हैं
किसी राह चलने को
जिसके हर छोर पर टंगे हुए हैं 'नो वेकेंसी' के बोर्ड...
दाँव पर उनका बस सिक्का है, हमारी है जिन्दगी।"⁴³

बहुत मुश्किल से यदि कोई व्यक्ति रोजगार प्राप्त कर ही लिया है, तो उसे अफसरशाही की स्वेच्छाचारिता और उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। इस तरह देश में बढ़ती आर्थिक विसंगतियों के कारण वर्तमान परिवेश में व्यक्ति आर्थिक दबावों से घिरने

लगा है । जिसका अंकन जगदीश चतुर्वेदी की कविता में इस प्रकार प्रकट होता है --

"हम सब हैं नियति-चक्र में विश्वास - खनेवाली

पीढ़ी की असफल औलादें

निष्प्राण, निर्जीव ।

हमें पियानों पर गीत नहीं भाते

हमें कुशन पर बैठे लोगों पर खीझ होती है ।

हम अपने स्वार्थ में भरे हुए लोगों पर

उछालते हैं गालियों के छोटें ।

हम सब अभाव में रहकर सहज-बुद्धि

गुबरीले कीड़े हैं

जिनका विकास रुक गया है ।"⁴⁴

आधुनिक युग की विषमताग्रस्त परिस्थितियों को झेलते हुए व्यक्ति-मानव में भविष्य के प्रति आस्था अभी खत्म नहीं हुई । वर्तमान के प्रति उदासीन होते हुए भी आज व्यक्ति अपने भविष्य के प्रति आशापूर्ण दृष्टिकोण अपनाता है । इसीलिए उसे यह कहने में गर्व महसूस होता है कि -

"मैंने इन्तजार किया --

अब कोई बच्चा

भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा ।

अब कोई छत बारिश में

नहीं टपकेगी ।

अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में

अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा

अब कोई दवा के अभाव में

घुट-घुट कर नहीं मरेगा

अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा

कोई किसी को नंगा नहीं करेगा

समझाता रहा - जो मैं चाहता हूँ --

वही होगा । होगा -- आज नहीं तो कल

मगर, सब कुछ सही होगा ।"⁴⁵

अतः वर्तमान परिवेश में व्यक्ति-मानव के जीवन की इस आर्थिक चेतना को शब्दबद्ध करने का हिन्दी कवियों ने सफल प्रयास किया ।

4.3 रणनीति, चेतना :

भारत लोकतंत्रीय-शासन-पद्धति को अपनानेवाला, विश्व शांति के लिए प्रयत्नशील, विश्व में सबसे पहला राष्ट्र है । स्वतंत्रता के पूर्व देश में व्यक्ति के विकास की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी । प्रत्येक दृष्टि से उसका शोषण होता था और न्याय की तो उसे कोई आशा ही नहीं थी । संविधान लागू होते ही नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को सुरक्षित किया गया, साथ ही राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों का समावेश कर प्रत्येक नागरिक को सर्वांगीण उन्नति का अवसर प्रदान किया गया । भारत की राजनैतिक शक्ति का विकास स्वाधीनता के पश्चात् हुआ । वयस्क मताधिकार ने नागरिकों को विविध दलों के प्रति सोचने-विचारने के लिए बाध्य किया । सत्ता के विकेन्द्रीकरण से राजनीतिक चेतना को विशेष गति मिली है ।

भारत में एक समय ऐसा था जब राजनीतिक दलों और राजनीतिज्ञों का जनता आदर करती थी और मतदान का प्रयोग करना जनता के लिए मान की बात थी, लेकिन क्रमशः राजनीति में बढ़ती अवसरवादिता, स्वार्थपरता, धनलोलुपता और अनैतिकता ने आम व्यक्ति का मोहभंग कर दिया । अब राजनीति का स्वरूप आम जनता के लिए महत्वपूर्ण नहीं रही । जनता के प्रति राजनेताओं की असहज और औपचारिकतापूर्ण व्यवहार को देखते हुए आज का व्यक्ति राजनीति के प्रति कोई अपेक्षा नहीं रखता ।

वर्तमान परिवेश में जनता के प्रति राजनीतिज्ञों की कृत्रिम संवेदनाओं पर व्यंग्य करते हुए कवि त्रिलोचन लिखते हैं -

"इलायची से बसा हुआ, रुमाल लगाया --
आँखों पर कि वह चले आँसू, और साथ ही
नाम किसान मजदूर का लिया, और हाथ ही
नया दिखाया नेता ने, स्वर नया जगाया ।"⁴⁶

डॉ. बच्चन सिंह ने तो वर्तमान विसंगतियों के लिए राजनीति को ही बाध्य करते

है । वे लिखते हैं - "हमारे देश में इस स्थिति के लाने की प्रमुख जिम्मेदारी आज के खोखले लोकतंत्र की है । यह स्वाभाविक अर्थ में लोक तंत्र नहीं, तंत्र लोक है । उसका आरंभ उसी समय हो जाता जिस समय से व्यक्ति-पूजा शुरू हुई । व्यक्ति-पूजा से अभिभूत होने का फल यह होता है कि लोग शक्तियों को एक व्यक्ति में केन्द्रित कर देते हैं और उसका अपना कुछ नहीं रह जाता ।"⁴⁷

वर्तमान विषाक्त लोकतंत्रीय प्रणाली की रूपरेखा के प्रति आम व्यक्ति का आक्रोश राजकुमार चौधरी के शब्दों में स्पष्ट झलकता है -

"आदमी को तोड़ती नहीं है लोकतांत्रिक पद्धतियां
केवल पेट के बल ! उसे झुका देती है धीरे-धीरे अपाहिज
धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजभक्त
देश प्रेमी नागरिक बना लेती है । आदमी को इस लोक
तांत्रिक संसार से अलग हो जाना चाहिए..."⁴⁸

भारत में मतदान के नाम पर आम आदमी को जो अधिकार मिला है, वह भी सच्चे नागरिक के लिए किसी काम का नहीं रहा । राजनीतिक विसंगति में आम आदमी के इस मोह भंग का चित्रण धूमिल के शब्दों में स्पष्ट मिलता है -

"मतदान होते रहे
मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे
उसी लोकनायक को
बार-बार चुनता रहा
जिसके पास हर शंका और
हर सवाल का
एक ही जवाब था
यानी कि कोट के बटन-होल में
महकता हुआ एक फूल
गुलाब था ।"⁴⁹

आज हर नेता में कुर्सी से चिपकाने की आदत बन गई है और जो भी सत्ता में

बैठता है, उसे अपना जागीर और पैतृक संपत्ति समझने लगा है । वास्तव में आज राजनीतिज्ञ बन कर जो जनता के सामने आ रहे हैं उनमें आम आदमी की कोई दिलचस्पी नहीं रही । आज का व्यक्ति तो उसे आदमी तक नहीं मानता -

"आदमी की खाल में
गधे और भेड़िये का
आधा-आधा भेजा लिए
घूमते-घूमते राजनीति के झण्डा बरदार
पूरा देशा बूचड़खाने की तरह है ।"⁵⁰

आज राजनीति आम व्यक्ति के लिए किसी महत्व की तो नहीं रही, बल्कि वह सोचता है कि राजनीति से देश को क्षति भी पहुंच रही है । लोकतंत्र की छाया में पनप रही राजनीतिक अव्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए रघुवीर सहाय लिखते हैं -

"पूछेगा संसद में भोला-भाला मंत्री
मामला बताओं हम कार्यवाही करेंगे
हाय-हाय करता हुआ
हाँ-हाँ करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एक होगा
जितना बड़ा दल होगा उतना ही
खाएगा देश हो ।"⁵¹

वर्तमान राजनीति एक व्यवसाय बन कर रह गयी है । आम आदमी की अब इस राजनीति से किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रही, लेकिन कभी-कभी उसे यह प्रश्न तो अवश्य खाता होगा कि -

"क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है ?" ⁵²

आधुनिक परिवेश में इन राजनीतिक विकृतियों को देखकर व्यक्ति-मानव क्षुब्ध है फिर भी देश की राजनीतिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए उसे स्वीकारना पड़ता है। इसलिए न चाहते हुए भी आज वह विकल्प के अभाव में विवशतावश इसे स्वीकारने को अभिशप्त है। उसकी यह मजबूरी अक्सर उसे ऐसी स्थिति में लाकर खड़ा करती है जिसमें वह अपने को मूर्ख महसूस करता है -

"अक्सर ऐसा होता है
कि भाषणों से भरी सभाओं
और प्रदर्शनियों की सारी भीड़ों में
मुझे लगता है कि मैं ही एक मूर्ख हूँ
कायर ! गद्दार !!"⁵³

राजनीति की इस आपाधापी और दौड़-धूप ने आज व्यक्ति को जीवन मूल्यों, सिद्धांतों व अस्थाओं के प्रति विरोधात्मक रुख अपनाते हुए अपने ही सुख-सुविधाओं तक ही सीमित कर दिया है। राजनीतिक रूप से व्यक्ति का मोहभंग और व्यक्ति-जीवन की राजनीतिक चेतना को आधुनिक हिन्दी कवियों ने बड़ी साहसिकता से अपनी कविताओं में अंकित किया है।

4.4 सांस्कृतिक व मूल्यगत चेतना :

संस्कृति का स्वरूप अधिक सूक्ष्म और जटिल है। संस्कृति जीवन मूल्यों की वह अंतश्चेतना है, जो सभ्यता के रूप में प्रकट होती है। सभ्यता यदि बाह्य शरीर है तो संस्कृति उसकी आत्मा है। संस्कृति मानव जीवन के बाह्य, आंतरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा धार्मिक जीवन को अभिव्यक्त करती है। आंतरिक और बाह्य जीवन और मन और कर्म का समंजन ही संस्कृति के मूल में स्थित है।⁵⁴ अतः सामाजिक जीवन की आंतरिक मूल प्रवृत्तियों का संश्लिष्ट रूप ही संस्कृति है।

व्यक्ति के आचार-विचार, विश्वास, परंपराएँ, सामाजिक संबंध, जीने का ढंग आदि सब संस्कृति के अंतर्गत ही आते हैं। संस्कृति सामाजिक जीवन को गति एवं रूप प्रदान करती है। किसी भी देश के साहित्य और कला के ज्ञान द्वारा उस देश की संस्कृति को समझा जा सकता है। साहित्य रचना तो एक साहित्यिक प्रक्रिया ही है जिसमें समाज का

योगदान निहित रहता है । गजानन माधव मुक्तिबोध मानते हैं कि काव्य-रचना केवल व्यक्तिगत न मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं, वह एक संस्कृतिक प्रक्रिया है । उसमें जो सांस्कृतिक मूल्य परिलक्षित होते हैं, वे व्यक्ति की देन नहीं, समाज की या वर्ग की देन है ।⁵⁵ अतः समाजिक सन्दर्भ में मूल्यों का विशिष्ट महत्व है ।

मूल्य समाज के वे आधार स्तम्भ हैं जिन पर समाज की सभ्यता और संस्कृति का भव्य भवन आधारित रहता है । मूल्यों का क्षेत्र अति विस्तृत है । इसमें युगानुरूप परिवर्तन होता रहता है । चिंतन और धारणा को पार करने के बाद ही कोई विचारणा मूल्य के पद पर प्रतिष्ठित होती है । मूल्य ऐसे अलिखित विधान हैं जिनका समाज में परंपरा से अनिवार्य रूप से पालन होता आया है ।

परिवेशगत परिवर्तन के साथ जब परंपरागत मूल्य सार प्रतीत नहीं होते, तब उनके स्थान पर युगानुकूल नवीन मूल्यों की स्थापना होती है । पुराने मूल्य डूबते हुए सूरज के समान है तो नए मूल्य उभरते हुए सूरज के समान हैं । मूल्य परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है -

"मगर तुम खुद सोचो कि डूबरे में
डूबता हुआ सूरज
खेत की मेड़ पर खड़े आदमी को
एक लम्बी परछाई के सिवा और क्या दे सकता है ?"⁵⁶

प्रत्येक युग के अपने मूल्य होते हैं । प्राचीन काल के मूल्य कोरे अंध विश्वासों पर निर्भर थे, लेकिन आधुनिक युग के मूल्य किसी-न-किसी तार्किक कसौटी पर कसकर ग्रहण किये जाते हैं । प्रत्येक समाज और पीढ़ी अपनी परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में नये मूल्यों को स्वीकारती हैं । मूल्य परिवर्तन की यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है ।

भारतीय परिवेश में औद्योगीकरण और ज्ञान-विज्ञान ने मूल्य-दृष्टि को गंभीर रूप से प्रभावित किया है । विज्ञान के विभिन्न आविष्कारों ने विभिन्न संभावनाओं का उद्घाटन कर जीवन के परम्परागत मूल्यों को चोट पहुंचायी । अब ये परंपराएँ बोझ बन कर रह गयी हैं जिन्हें आज का व्यक्ति अभिशाप समझता है -

"अब नहीं सहा जाता यह अभिशाप जिसे सिर पर लादे
गुजर गये कई वर्ष"⁵⁷

आज भारत की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में काफी परिवर्तन आये। जिनका मूल्यों पर अपना प्रभाव है। मूल्य परिवर्तन से मानवीय संबंधों में परिवर्तन आया। इससे नैतिक मान्यताओं में भी आश्चर्यजनक परिवर्तन परिलक्षित होने लगे। अब विवाह के पारंपरिक बन्धन ढीले पड़ गये हैं। विवाह अब दो आत्माओं का पुनीत-मिलन, जन्म-जन्मांतर का संबंध एवं एक धार्मिक संस्था न रह कर मात्र एक मैत्री संबंध अथवा समझौता बन कर रह गया है। आधुनिक सभ्यता के अनुसार, अच्छे पति-पत्नी के लिए एक दूसरे के आचरण के प्रति मौन धारण करना चाहिए। पति-पत्नी के संबंध अब स्वच्छन्दता पर आधारित हैं। विनोद चन्द्र पाण्डेय की नायिका पति के होते ही अपने प्रेमी के साथ संबंध रखती है और उसमें उसके 'पति की भलाई' भी उसे नजर आती है -

"सौ फूल झरे हैं मुझ पर एकाएक
पाप, सिर्फ पाप कह दोगे ?
मैंने छिपाई है प्यार की सुगंध
पति का जीवन पूर्ण करते
क्या नैतिक होता जला देना जीवन
प्रेम का रहस्य रखने से
मेरी जरूरत और पति की भलाई
मैंने न्याय किया दोनों से ।"⁵⁸

यह 'न्याय' आधुनिक जीवन का है, जिसमें पारिवारिक दायित्व और अपने सुख के बीच एक 'मध्य' मार्ग खोज लिया गया है। आधुनिक सभ्यता की यह प्रवृत्ति संस्कृति की एक पहचान बनती जा रही है। जिसकी अभिव्यक्ति आधुनिक हिन्दी कविता में स्पष्ट मिलती है।

4.5 धार्मिक चेतना :

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य सृष्टि के रहस्य को ज्ञात करने के लिए उद्यत रहा है। जिसके फलस्वरूप दो दृष्टिकोण हमारे समक्ष उपस्थित होते हैं। प्रथम दृष्टिकोण आदर्शवादी, आध्यात्मिक या धार्मिक है जो विश्व के मूल में चेतन-सत्ता की उपस्थिति की मान्यता रखता है ; दूसरा दृष्टिकोण भौतिकवादी है जिसकी मान्यता है कि सृष्टि के मूल में 'पदार्थ' की ही उपस्थिति है।

भारत में पहले आदर्शवादी व आध्यात्मिक दृष्टिकोण का बोलबाला था । इस संबंध में विश्व में भारत की अपनी पहचान थी । भारत के बहुत-से ऐसे धार्मिक प्रवक्ता रहे, जिन्होंने विश्व के अधिकाधिक व्यक्तियों को अपने सिद्धांतों व मान्यताओं से प्रभावित किया था। आधुनिक काल में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से जो परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं, उनसे व्यक्ति का यह आदर्शवादी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे हैं । आज भारत में प्रथम व आध्यात्मिक दृष्टिकोण के स्थान पर दूसरे और भौतिकवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय मिलने लगा है । जिसमें वैज्ञानिक उन्नति का अधिक प्रभाव माना जाता है ।

विज्ञान के नित नए अविष्कारों के परिणामस्वरूप इस भौतिकवादी दृष्टिकोण को अधिक प्रचुरता मिल रही है । इस परिप्रेक्ष्य में देश में प्रचलित विभिन्न मानदण्डों का तर्क के आधार पर मूल्यांकन किया जा रहा है। उदाहरण के लिए पूर्व युग में जो 'सत्यं, शिवम् और सुन्दरम्' था, उसका माप जनहित के सन्दर्भ में इस प्रकार किया जा रहा है - "आज सत्य से तात्पर्य है भौतिक वास्तविकता, शिव का अर्थ है भौतिक जीवन-सामाजिक स्वास्थ्य में सहायक होने वाला और सुन्दर का आशय है स्वाभाविक एवं प्रकृत ।"⁵⁹

अस्तित्ववादी विचारधारा विश्व के मूल में किसी चेतन-सत्ता की उपस्थिति को स्वीकार नहीं करती । इसे विचारधारा में परम्परागत या तथाकथित ईश्वर में आस्था का मान्य नहीं है। अस्तित्ववाद मानव-जीवन को क्षणभंगुर व निरर्थक मानकर उसे एक मानवीय अर्थ व मूल्य देने की चेष्टा करता है । यह धर्मनिरपेक्ष स्तर पर मानव-जीवन के लिए चिंतित है । वर्तमान युग में बढ़ती वौद्धिकता और परिवेशगत मोहभंग व्यक्ति को अस्तित्ववादी विचारों की ओर प्रेरित कर रहे हैं । आज व्यक्ति में ईश्वरीय सत्ता के प्रति आस्था उठने लगा है और वह उन सभी धार्मिक अनुष्ठानों का वह विरोध करने लगा जिनका पालन करना एक समय अनिवार्य माना जाता था । समाज में प्रचलित ऐसे ही धार्मिक अनुष्ठानों और अंधविश्वासों पर व्यंग्य करते हुए शंकर शर्मा लिखते हैं -

"ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर दाढ़ी मूँछ,
वाटर बायसिकिल के द्वारा बिना गाय की पूँछ,
मरों को पार उतारूँगा
किसी से कभी न हारूँगा ।"⁶⁰

जो आस्था कभी ईश्वर के गुण-गान में लीन होती थी, अब वही आस्था मानव के साहस और संकल्प की स्तुति करने लगी है और ईश्वर के स्थान पर मानव को महिमान्वित करने लगी -

"मैं एक प्रवाह में हूँ -

लेकिन मेरा रहस्यवाद ईश्वर की ओर उन्मुख नहीं है,

मैं उस असीम शक्ति से सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ

जो मेरे भीतर है "61

आज सृष्टि के केन्द्र में मानव-जीवन स्थापित हो चुका है । अब विकसित व्यक्ति को ही देवता के रूप में माना जाने लगा है -

"विकसित व्यक्ति ही वह देवता है

इतर मानव जिसे केवल पूजता है :

आँक लेगा वह पनप कर

विश्व का विस्तार अपनी अस्मिता में, ...

सिर्फ उसकी बुद्धि को हर दासता से मुक्त रहने दो ।"62

ईश्वर हो या न हो आज इसका कोई अंतर मनुष्य पर नहीं पड़ता । क्योंकि आज व्यक्ति मानता है ब्रह्म जैसी कोई पृथक सत्ता नहीं है -

"दर्शन की भाषा में

जो ब्रह्म है

वही गणित का शून्य है ।

ब्रह्म को पृथक से नहीं जाना जा सकता

क्योंकि वह जगत की भाँति सत्ता नहीं है ।"63

आज के व्यक्ति की वैयक्तिकता, स्वतंत्रता और निर्णय लेने की क्षमता ही उसे सही मनुष्य बनाने के लिए काफी समझी जा रही है । उसके लिए ईश्वर की प्रकल्पना की आवश्यकता तक महसूस नहीं हो रही है । इसीलिए आज का व्यक्ति अपने आत्मतत्त्व के प्रति उदासीन है । उसे भीड़ में खोया हुआ एक मामूली व्यक्ति बन कर रहना पसंद है -

"मैं - इस नीरस भक्ति के मंत्रों से

तंग आ गया हूँ

* * *

मुझे बस ! भीड़ में खोया

मामूली मनुज ही रहने दो

मुझे कुछ और दिन जी लेने दो ।"⁶⁴

आज व्यक्ति ईश्वर की कल्पना को भी प्रगति की राह में प्रतिरोधक मानने लगा है। उसके लिए मानव ही सर्वोपरि है। उसके ऊपर ईश्वर या अन्य किसी भी शक्ति की प्रतिष्ठा मानी नहीं जा सकती। आज वह पौराणिक पात्रों व घटनाओं को मानता नहीं है ऊपर से उनका व्यंग्य करने लगा है -

"रात मैंने एक स्वप्न देखा

मैंने देखा

कि मैंने अस्पताल में नर्स हो गई है

और विश्वामित्र ट्यूशन कर रहे हैं

उर्वशी ने डांस स्कूल खोल दिया है

नारद गिटार सीख रहे हैं

गणेश टाफी खा रहे हैं

और बृहस्पति अंग्रेजी में अनुवाद कर रहे हैं ।"⁶⁵

आज जीवन में व्यक्ति की बढ़ती प्रमुखता को देखते हुए ईश्वर की उपस्थिति पर प्रश्न चिह्न लगाया जा रहा है और ईश्वर की तुलना में व्यक्ति-मानव की प्रतिष्ठा की जा रही है। व्यक्ति-मानव की प्रमुखता को स्वीकार करते हुए कवि गिरिजा कुमार माथुर लिखते हैं -

"तू बात कहे जो एक बार

वह कोटि कंठ स्वर दुहराये

तू बोये जो भी भाव-बीज

वे सदियों तक उगते जायें

दुःख के दानव ग्रह बुझें सकल

इन्सान बने खुद ही ईश्वर

मानवता उजला पाखा बने ।"⁶⁶

कवि अज्ञेय तो व्यक्ति-मानव की आस्था पर पूर्ण विश्वास है । इसलिए वे मानते हैं कि यदि मानव में आस्था हो, तो वह देवता भी बन सकता है -

"आस्था न कांपे
मानव फिर मिट्टी का भी
देवता हो जाता है ।"⁶⁷

व्यक्ति-जीवन में भौतिकवादी दृष्टिकोण की यह चेतना एक हद तक उसकी पहचान तो बन कर रही है, लेकिन इससे उसने ईश्वर की सत्ता के प्रति अनास्था प्रकट कर अपने को एक ऐसे धरातल पर लाकर खड़ा किया जहाँ उसकी संवेदनाओं को प्रकट कर सम्भल पाने के लिए उसे कोई जगह नहीं है । वास्तव में आध्यात्मिक चिंतन व्यक्ति का एक ऐसा विश्वास है जिसके सहारे वह आज तक अपने को तसल्ली देता आ रहा है कि उसकी भलाई चाहने वाला कोई है और उसके शरण में जाने से उसे शांति मिलती है ।

आज व्यक्ति-चेतना के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति को सारी विषमताएँ खुद भुगतनी पड़ रही हैं । पहले भी इन विषमताओं को उसे ही भुगतना पड़ता था, लेकिन जब भी इन्हें भुगतने में व्यक्ति अपने को असमर्थ पाता था, तब वह उसे नियति मानकर ईश्वर की शरण में जाता था और वह कुछ हद सान्त्वना महसूस करता था । परन्तु आज की बात अलग है । आज व्यक्ति न तो किसी अज्ञात सत्ता की शरण में जाकर अपने को, झूठी ही सही, तसल्ली दे पाता है और न ही परिस्थितियों का सामना कर लड़ सकता है । ऐसे में विकल्प के अभाव में अक्सर वह मृत्यु को भी स्वीकारने के लिए विवश हो जाता है, क्योंकि उसके लिए ईश्वर तो है ही नहीं -

"ईश्वर तो नहीं ही है सहा नहीं जाता अन्याय अगर
तब यह बदबू-भरी मांस और हड्डी की कोठरी छोड़ दो
रें रें रें मत करो वह तो नहीं ही है ।"⁶⁸

व्यक्ति मानव की यह धार्मिक चेतना आधुनिक हिन्दी कविता में उसी रूप में प्रतिफलित है जिस रूप में वह विद्यमान है ।

पंचम अध्याय

व्यक्ति चेतन का स्वरूप - वैयक्तिक सन्दर्भ में

- 5.1 व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना**
- 5.2 समष्टि में व्यष्टि के महत्व का प्रतिपादन**
- 5.3 वैयक्तिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति**
- 5.4 व्यक्ति-जीवन में बौद्धिकता का प्रवेश**
- 5.5 व्यक्ति-जीवन में आस्था की खोज**
- 5.6 संघर्ष - जीवन की नियति**

5.1 व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना :

अस्तित्ववादी चिन्तकों के अनुसार व्यक्ति-स्वातंत्र्य का विशेष महत्व है। इस संबंध में विवरण देते हुए डॉ. लाल चन्द्रगुप्त 'मंगल' लिखते हैं - "अस्तित्ववादी के अनुसार मनुष्य अपने विषय में सोचने, समझने, जानने, निर्णय लेने और कार्य करने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है। कोई भी क्या सोचता-समझता है और क्या निर्णय लेकर कार्य करता है, इस सब के लिए वह पूर्ण स्वतंत्र है। यदि कोई व्यक्ति किसी भी मनुष्य के अधिकारों और निर्णयों के संबंध में हस्तक्षेप करता है तो उसे यह बात सहन नहीं हो सकती।"⁶⁹

वास्तव में व्यक्ति-स्वातंत्र्य और वरण-स्वातंत्र्य मूलतः अस्तित्ववादी अवधारणाएँ हैं। अस्तित्ववाद के अनुसार अस्तित्व की पहली आवश्यकता और शर्त यह है कि मनुष्य जो होना चाहे उसे वरण करने की उसे पूर्ण स्वतंत्रता हो। अतः इस संबंध में उसे किसी प्रकार की नियति व पूर्व निर्धारित मान्यता के आधार पर चलने की जरूरत नहीं है। आज का व्यक्ति भी यही मानता है कि -

"जीवन और मृत्यु के बीच जो भूमि है
वह नियति की नहीं मेरी है।"⁷⁰

भारत में स्वतंत्रता के बाद संविधान के प्रदत्त मौलिक अधिकारों से व्यक्ति के मानसिक जगत में परिवर्तन आया। वयस्क मताधिकार से सामान्य व्यक्ति को भी नई प्रतिष्ठा का बोध हुआ। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकारों की घोषणा ने नागरिकों में स्वाभिमान उत्पन्न किया है। संवैधानिक समानता के कारण नारी की स्थिति पुरुष के समान ही गौरवशाली बनी। आधुनिक काल में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना इसी से आरंभ होती नजर आती है।

वास्तव में व्यक्ति-स्वातंत्र्य कोई नवीन मूल्य नहीं है। इतिहास में अनेक बार इसे चरम मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया, पर यह भी सत्य है प्राचीन काल से लेकर आज तक जितनी बार व्यक्ति ने सिर उठाया, वह हर बार समष्टि के किसी-न-किसी रूप द्वारा कुचल भी दिया गया। मनुष्य का यह दुर्भाग्य रहा कि समष्टि उसकी इकाई पर और व्यक्तित्व पर सदा हावी रही।

वस्तुतः व्यक्ति ने समाज की रचना कुछ सुविधाओं के लिए की थी, पर उसे मालूम नहीं था कि किसी दिन यही समाज उसकी असुविधाओं का सबसे बड़ा कारण बन जाएगा -

"जब जब सिर उठाया अपनी चौखट से टकराया ।
बुरा किया मैंने जो यह घर बनाया ।"⁷¹

पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति को कोई महत्व नहीं दिया गया था । हर व्यक्ति को परंपराओं व मान्यताओं का रक्षक बनना पड़ता था, जिससे व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना विद्रोह के रूप में स्वीकार की जाती थी, लेकिन आज विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से पारंपरिक मान्यताओं पर व्यक्ति की आस्था उठने लगी है । पूर्व निश्चित अवधारणों की अमान्यता ने व्यक्ति को यथार्थ के धरातल पर सोचने को मजबूर किया -

"राजपथ रथ के लिए
पगवाट है पग के लिए,
सब मार्ग की अपनी दिशा, अपने क्षितिज
हम क्या करें ?"⁷²

व्यक्ति की इसी सोच ने उसे समाज की कुरूपता और आत्म-विहीनता के स्वरूप को देखने को मौका दिया । परिणामस्वरूप जिस समाज को वह आज तक अपना पथ-प्रदर्शक मानता आया, उसके प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलने लगा । जहाँ-कहाँ वह लक्ष्य की पूर्ति में समाज को बाधक समझने लगा, उसके विरुद्ध अपना विद्रोह को स्वर देना शुरू किया और उसके नाश की परिकल्पना करने लगा -

"जो व्यवस्था, व्यक्ति के सत्कर्म को भी मान ले अपराध
जो व्यवस्था, फूल को खिलने न दे निर्बाध
जो व्यवस्था, वर्ग सीमित स्वार्थ से हो त्रस्त;
वह विषम घातक व्यवस्था शीघ्र ही हो अस्त ।"⁷³

समाज के प्रति व्यक्ति के इस विद्रोह में आधुनिक परिवर्तित परिस्थितियों का भी अपना योग रहा है । देश में पश्चिमीकरण, शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं मशीनीकरण जैसी प्रक्रियाओं ने परम्परागत सामाजिक मूल्यों के मेरुदण्ड को विशृंखलित कर दिया

और समाज में नवीन मूल्यों को बल मिलने लगा है । समाज में मूल्य-संक्रमण की स्थिति से समाज के स्थान पर व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिलने लगी है । आज वह परंपरागत मूल्यों के प्रति उदासीनता का रुख अपना रहा है ।

आज के व्यक्ति के लिए पुरानी मान्यताएँ पैरों में बाँधी गई जंजीर के समान हैं जो अधिक देर तक टिक नहीं पाएगी -

**"पैरों में बाँधी गई जंजीर
अधिक देर तक नहीं टिक पाएगी ।"**⁷⁴

परंपरा को नकारने की यह प्रवृत्ति व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना को स्पष्ट करती है । परिवर्तन के युग में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की इस भावना ने पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों में भी विघटन की भूमिका प्रस्तुत की । बृहत्तर समाज से लघुतर समाज की ओर आकर्षित होनेवाले व्यक्ति पारिवारिक क्षेत्र में 'संयुक्त परिवार' से 'एकल परिवार' की ओर अग्रसर होने लगा । समष्टि से व्यक्तिवाद की ओर बढ़ने वाले व्यक्ति एकल परिवार को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए अपेक्षाकृत अधिक सुविधाजनक पाने लगा और वह मानने लगा कि इस सीमित परिवार में स्वच्छन्द जीवन का अवकाश अधिक रहता है ।

आधुनिक युग में पुरुष के साथ-साथ नारी में भी अपने स्वातंत्र्य के प्रति जागरूकता आयी । आज वह भी पुरुष के समान जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत है । परिणामस्वरूप उसकी मानसिक स्थिति, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, आदि में अभूतपूर्व परिवर्तन दृष्टिगत होने लगा । वह भी अपने व्यक्तित्व की महत्ता और मूल्य समझने लगी और अपनी स्वतंत्र राह पर चलने का प्रयास कर रही है । आज वह निर्भीकता से समाज के उन ग्रन्थों को जला देना चाहती है जिन्हें पुरुषों ने मिलकर नारी के लिए बनाया था -

**"लेकिन मैं जला देना चाहती हूँ तमाम
ग्रन्थों को
जो षडयन्त्र की उपज है
जिन्हें पुरुषों ने मिलकर आकार दिए
पूत-मंत्रों और श्लोकों में ।"**⁷⁵

अपने स्वातंत्र्य के प्रति सचेत स्त्री और पुरुष में प्रतिबिम्बित यह चेतना यद्यपि एक-दूसरे के प्रति ध्यान देने का मौका तो दे रही है, लेकिन साथ ही वह पारिवारिक

संबंधों में बिखराव के रूप में भी दृष्टिगत होने लगी । जिससे आज का व्यक्ति यह महसूस करने लगा कि -

"जिन्दगी के टूटते-टूटते सम्बन्धों के पुल पर
मैं पूरी बोरियत के साथ दौड़ रहा हूँ ।" ⁷⁶

क्योंकि उसे अपने चारों ओर प्रतिबन्ध ही दिखते हैं संबंध नहीं -

"ऐसा लगता है कि मेरे चारों ओर केवल प्रतिबन्ध हैं --
जीवन नहीं, लोग हैं --सम्बन्ध नहीं," ⁷⁷

संबंधों को प्रतिबन्ध समझने की बात नारी भी मानती है । इसीलिए आज वह पत्नी से बहतर प्रेमिका बनकर रहना पसंद कर रही है ताकि संबंध यथावत बना रहे और किसी प्रकार का दायित्व भी उसे उठाना न पड़े -

"दोहराना होगा एक नियमित क्रम
मैंने नहीं जानी थी
प्यार की यह धिनौनी परिणति ।" ⁷⁸

पुरुष और नारी के इस स्वच्छन्द एवं मुक्त रहने की इच्छा ने समाज का स्वरूप भी बदल दिया । जिसका प्रभाव स्वयं स्त्री-पुरुष दोनों पर है । समाज में बढ़ती विश्रृंखला ने व्यक्ति-जीवन में एक ऐसी स्थिति लाकर खड़ा कर दी है, जिसमें व्यक्ति यह महसूस करता है -

"सारे सन्दर्भ व्यर्थ, जीवन का कुछ न अर्थ
अब ऐसा एक नहीं,
जो मेरे भाव ग्रहण करने में हो समर्थ ।" ⁷⁹

व्यक्ति-जीवन को बुरी तरह से प्रभावित करने वाली इस स्थिति से उभरकर परिवर्तित परिवेश के साथ दौड़ने का आज व्यक्ति हर संभव प्रयास कर रहा है और वह अपने आप पर अधिक निर्भर होना सीखने लगा है । इस बात पर स्त्री भी पुरुष के साथ-साथ चलने का प्रयास कर रही है ।

5.2 समष्टि में व्यष्टि के महत्व का प्रतिपादन

वर्तमान युग विदेशी दर्शन, मुख्य रूप से अस्तित्ववाद और फ्रायडवाद से बहुत प्रभावित है । इन विचारधाराओं ने व्यक्ति की दृष्टि से समाज को देखने की प्रवृत्ति अपनायी है । ये मानती हैं कि समाज व्यक्ति को नहीं, बल्कि व्यक्ति समाज को बना रहा है । इस परिप्रेक्ष्य में समाज के स्वरूप में परिवर्तन आया । पहले समाज में 'समाज-साध्य एवं व्यक्ति-साधन' की मान्यता का प्रचलन था, जिसका स्थान आज 'व्यक्ति-साध्य एवं समाज साधन' ने ले लिया है ।

अस्तित्ववादी चिन्तन में भी समाज और व्यक्ति की भावना को लेकर पर्याप्त वाद-विवाद रहा है और इस विषय में दार्शनिकों में पर्याप्त भेद-भाव है । "सात्र मानता है कि व्यक्ति अपने अस्तित्व का विकास करने में नितांत अकेला है । वह अपने ही स्वतंत्र निर्णयों द्वारा अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान किया करता है ।"⁸⁰ अस्तित्ववाद व्यक्ति की इकाई तथा स्वतंत्र अस्तित्व को बल देनेवाला जीवन दर्शन है । उसने व्यक्ति की जीवन-दृष्टि को विशेष रूप से प्रभावित किया है ।

आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण तथा औद्योगीकरण की पृष्ठभूमि में भी 'समष्टि' के स्थान पर 'व्यष्टि' को ही महत्व दिया जा रहा है । आज व्यक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखना चाहता है । वह अपने को एक स्वतंत्र अस्तित्वगत इकाई मानता है-

**"मैं असीम हूँ, एक असीम बूंद
असीम समुद्र को अपने भीतर प्रतिबिम्बित करती है ।"**⁸¹

यही कारण है कि अब समष्टि चिंतन विषयक विभिन्न मान्यताएँ बदलती जा रही हैं । समष्टिगत चिन्तन का स्थान व्यक्तिगत चिन्तन ग्रहण कर रहा है । परिवेशगत विषमताओं का भी इस दिशा में अपना सहयोग रहा । आज का परिवेश व्यक्ति का साथ देने को तैयार नहीं है । जिससे व्यक्ति समाज में अपने को अकेली पाने को मजबूर है । उसका अकेलापन उसे यह अनुभव कराता है -

"न देगा साथ । कोई पशु न पक्षी और नर-नारी

न देगा साथ कोई फूल, पत्थर, गीत सपना --
बस, अकेले तुम, अकेले तुम" ⁸²

व्यक्ति का यह अकेलापन भावनात्मक होने के बावजूद आत्मीयता से रहित भी प्रतीत नहीं होता -

"मैं भी हूँ
वह भी है
बहुत-से हैं हम, अकेले-अकेले
एक-एक अलग-अलग छिन्न-भिन्न नहीं हैं हम ।" ⁸³

वैसे तो व्यक्ति समूह में रहने वाला प्राणी है । सामूहिकता उसे सुरक्षा देती है -

"कौन है वह व्यक्ति जिसको चाहिए न समाज ?
कौन है वह जिसको नहीं पड़ता दूसरों से काज ?
चाहिए किसको नहीं सहयोग ?
चाहिए किसको नहीं सहवास ?" ⁸⁴

किन्तु सामूहिकता स्वयं बंधन व सीमांकन की सूचक है । जिसमें बंधना आज के व्यक्ति के लिए स्वीकार्य नहीं है । इसलिए आज का व्यक्ति सांचे ढले समाज से कुण्ठारहित इकाई (व्यक्ति) को ही बेहतर मानता है -

"अच्छी कुण्ठारहित इकाई
सांचे ढले समाज से
अच्छा अपना ठाठ फकीरी
मंगनी के सुख-साज से ।" ⁸⁵

अस्तित्ववादी जीवन-दर्शन के प्रभाव स्वरूप आज प्रत्येक क्षेत्र में मूल्य-वरण की स्वतंत्रता पर बल दिया जा रहा है । वस्तुतः ज्यों-ज्यों व्यक्ति की मौलिक चिन्तन-शक्ति का विकास होता जाता है, त्यों-त्यों वह परंपरा से चले आ रहे जड़ मूल्यों को छोड़ता जाता है और उसके स्थान पर नवीन मूल्यों का निर्माण करता है । आधुनिक युग में विज्ञान के

विकास के फलस्वरूप व्यक्ति ने परंपरागत जीवन-मूल्यों का अन्धानुकरण करने के स्थान पर उन्हें तर्क की कसौटी पर कसना आरंभ किया --

"आज हवा में कुछ बागीपन कुछ-कुछ और नया ही रंग
भूली जीर्ण पुरातन सब कुछ अब नवीन का कर लो संग
अब वैराग्य नया ही होगा, नई फकीरी, अभिनव जोग,
और जंग खाई-सी सड़ियल
रूढ़ श्रृंखला होगी भंग ।"⁸⁶

अतः आज की नई पीढ़ी के लिए परंपराएँ महत्वहीन हैं। ज्ञान-विज्ञान के विकास से व्यक्ति विगत से अपने आप को पृथक् मानने लगा है। व्यक्ति-चेतना का यह प्रभाव सामाजिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि पारिवारिक सन्दर्भ में भी देखने को मिल रहा है।

सामाजिक संस्थाओं में परिवार का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। सम्पूर्ण सामाजिक संस्थाओं में परिवार ही वह मूलभूत सामाजिक संस्था है, जिस पर सारी सामाजिक व्यवस्था आधारित है। यही वह कड़ी है, जो व्यक्ति का संबंध समाज से जोड़ती है। प्राचीन युग में समाज-संगठन का एक आधार संयुक्त परिवार था। "संयुक्त परिवार अपने आप में एक समुदाय है, जो एक व्यक्ति की सभी भौतिक और सांस्कृतिक आवश्यकताएँ पूरी करता है ।"⁸⁷

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में प्रारंभ से ही संयुक्त परिवार का ही महत्व रहा है, पर संयुक्त परिवार की उत्पत्ति भारत में जिस समय हुई आज की परिस्थितियाँ उससे नितांत भिन्न हैं। आज व्यक्ति का 'व्यष्टि' रूप इतना मुखर आने लगा है कि वह अब स्वयं को अपने पूर्वजों के संतान होने तक के सत्य को भी स्वीकारने को तैयार नहीं है -

"ओ मेरे अपाहिज पूर्वजों,
हम तुम्हारी सन्तान होने से इनकार करते हैं
क्योंकि हमारे और तुम्हारे बीच
खाइयों-सी दूरी
आग का दरिया बनकर बह रही है -
जब तुम दासत्व में निद्रा-मग्न थे,

हम विप्लव-परचम उठाने के लिए
प्रतिबद्ध हैं ।"⁸⁸

समाज में अपने को अकेले द्वीप के समान प्रस्तुत कर अपनी वैयक्तिकता को महत्व देते हुए समाज से संघर्ष करने वाले व्यक्ति आज इतना संकुचित हो गया है कि वह अपने व्यक्तिगत पीड़ा को भी समाज के सामने प्रकट करना नहीं चाहता। क्योंकि वह जानता है कि इससे कोई लाभ नहीं है -

"मेरी वेदना कोई पैम्पलैट तो नहीं है कि बांट दूं
हर सड़क पर, चौराहे पर
मेरा दर्द कोई पोस्टर तो नहीं है कि चिपका दूं
हर मोड़ पर, दीवार पर ।"⁸⁹

सामाजिकता को भार समझने वाले व्यक्ति अपने सुख व दुःख को किसी के साथ मिलजुल कर बांटना नहीं चाहता। क्योंकि वह यह मानने लगा है कि सामाजिकता अब उसके के लिए किसी काम की नहीं रही।

समष्टि में अपना अलग अस्तित्व बनाए रखने के प्रयास में नारी भी पुरुष की ही अनुगामी रही है। सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों ने उसे भी पुरुष के साथ काम करने के लिए विवश कर दिया। आज वह भी पुरुष के समान विभिन्न कार्य करने में समर्थ हो चुकी है। नारी की इस चेतना ने उसे अपने व्यक्तित्व और महत्व के प्रति सचेत कर दिया। आज नारी भी परिवार संबंधी उन मान्यताओं का विरोध करती है जिनका उल्लेख समाज में प्रतिष्ठा के साथ किया जाता है -

"कितना छल लेती हैं मान्यतायें
कितना धोखा देते हैं संस्कार
वे बना देते हैं आदमी को पति
स्त्री को पत्नी
और सन्तानों के मस्तक पर
दोनों का नाम जोड़कर
चिपका देते हैं एक पट्टा ।"⁹⁰

अतः आज की नारी अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपने 'व्यष्टि' रूप पर ध्यान देने के लिए विवश है। नारी की विवशता हो या अपने अस्तित्व के प्रति सजगता हो, चाहे कारण जो भी हो नारी की इस चेतना से स्त्री-पुरुष के संबंधों में परिवर्तन आया है। आज समाज तलाक लेने वालों की संख्या बढ़ रही है।

परिवर्तित परिवेश में स्त्री व पुरुष की यह व्यष्टिगत चेतना पारंपरिक और विश्व प्रसिद्ध भारतीय पारिवारिक संस्कृति को चोट पहुंचा रही है। क्योंकि पारिवारिक जीवन के संबंध में भारतीय संस्कृति की विश्व भर में अपनी पहचान है। विश्व के कई देश चाहे वे जितनी भी प्रगति क्यों न करें, इस संबंध में भारत को ही आदर्श मानकर चलते हैं।

जिन्दगी भर पति-पत्नी एक दूसरे का साथ निभाने की प्रवृत्ति भारत में ही अधिक पायी जाती है। इस प्रवृत्ति की विशेषता यह है कि इससे पारिवारिक संगठन मजबूत होता है और उस परिवार में पलने वाले बच्चे अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं। जिसका उस बच्चे के व्यक्तित्व-निर्माण में अधिक महत्व रहता है। अतः भावी पीढ़ी को एक सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने में इस पारिवारिक संगठन से सफल योगदान मिलता है।

5.3 वैयक्तिक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति :

व्यक्ति-मानव के पारस्परिक सम्बन्धों, उनके क्रिया-व्यापारों, उनके सोचने के तौर तरीकों, उनकी मान्यताओं एवं विश्वासों तथा उनकी रीति-नीतियों आदि का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन एक विशिष्ट प्रणाली से होता है, जिससे उनके व्यवहार नियंत्रित एवं नियमित होते हैं। यह जीवन-प्रणाली कुछ विशिष्ट सिद्धांतों पर आधारित होती है जिन्हें **जीवन-मूल्य** कहा जाता है।

हर व्यक्ति के अपने-अपने विचार होते हैं। उन्हीं के आधार पर उसका दृष्टिकोण व्यक्त होता है। व्यक्ति के विचार उसके मूल्य हैं। जिस तरह समाज के मूल्य मान्यताओं के रूप में व्यक्ति-जीवन को प्रभावित करते हैं और उन्हें मानकर चलना व्यक्ति के लिए अनिवार्य होता है, उसी तरह व्यक्ति भी अपने वैयक्तिक मूल्यों की समाज में प्रतिष्ठा करने का निरंतर प्रयास करता रहता है -

"छोटे से आँगन में

माँ ने लगाए हैं
 तुलसी के बिरवे दो
 पिता ने उगाया है
 बरगद छतनार
 में अपना नन्हा गुलाब
 कहाँ रोप दूँ ।"⁹¹

अतः परिवार या समाज में रहते हुए भी व्यक्ति अपने पृथक्त्व के लिए कोशिश करता है। इतिहास में ऐसे सन्दर्भ भी देखने को मिलते हैं, जहाँ अकेले व्यक्ति ने समाज को प्रभावित किया था। व्यक्ति और समाज के बीच मूल्यों के आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया निरंतर रूप से चलती रहती है।

अस्तित्वादी दर्शन ने व्यक्ति-जीवन के लिए नए मूल्य विकसित किए हैं। अहं की चेतना, जीने का मोह, उन्मुक्त भोग, प्राचीन आदर्शों का तिरस्कार, जीवन की स्वतंत्र एवं मुक्त विचारणा, अपने अस्तित्व का बोध आदि इस चिंतन के मुख्य तत्त्व हैं। इस विचारधारा के अनुसार हर पारम्परिक विचार, मान्यता व धारणा सत्य की कब्र है और मूल्यों का अस्वीकार इसलिए किया जाता है कि मनुष्य अपने लिए मूल्यों का निर्माण करने में स्वतंत्र है और वह जीवन में हर पल का भोग करने में स्वतंत्र है। यह विचारधारा मानती है कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है, इसलिए अपनी रुचि, अपनी पूर्ति एवं अपनी तृप्ति के क्षेत्र में वह पूर्ण स्वतंत्र है।

आधुनिक समाज में विज्ञान द्वारा प्रदत्त जीवन-दृष्टि व्यक्ति-जीवन को अधिक प्रभावित कर रही है। हर एक बात पर यथार्थ का सहारा लेना व्यक्ति की आदत बन गयी है। परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों व मान्यताओं के प्रति प्रश्न चिह्न खड़ा हो गया। समाज के अधिकतर मूल्यों को व्यक्ति के इस दृष्टिकोण के कारण तर्कसंगतता प्राप्त नहीं हो पा रही है। इससे व्यक्ति समाज के उन मान्यताओं के प्रति अपना विरोध प्रकट करने लगा है और उनके स्थान पर नये मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहता है जो उनके अपने हैं।

मूल्य-संकट के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति बहुत कुछ बौद्धिक और तार्किक बनता जा रहा है, जिसे किसी परंपरागत व पूर्व निर्धारित जीवन दृष्टि से समझना या परखना असंभव

होता जा रहा है । क्योंकि वह स्वयं उन परंपराओं से ऊब चुका है -

"मैं ऊब चुका इस महिमा मण्डित छल से,
जब मुझे स्वयं का वास्तव सत्य पकड़ना है
जिन आदर्शों ने
मुझे छला है कई बार
मेरा सुख लूटा है
अब उनसे लड़ना है ।"⁹²

समाज और व्यक्ति के बीच मूल्य-संकट की यह प्रक्रिया कभी-कभी दोनों के बीच संघर्ष खड़ा कर रही है । आज व्यक्ति के लिए समाज के उन मूल्यों को सहना भी मुश्किल है, जिन्हें वह बोझ समझता है -

"अब नहीं सहा जाता यह अभिशाप जिसे सिर पर लादे
गुजर गये कई वर्ष ।"⁹³

आज के व्यक्ति के समक्ष मूल्यों का संकट एक समस्या बन गयी है । उसकी दृष्टि में पारस्परिक रीति-रिवाज, मान्यताएँ और आदर्श सभी निरर्थक प्रतीत होने लगे । क्योंकि
• आज व्यक्ति के लिए किसी प्रकार की परतंत्रता या दबाव असह्य है -

"मुक्त है इंसान का भी मन
स्वयं ही सिद्ध नैतिक और सामाजिक
नियम जिसको प्रकृति गुण धर्म के कारण
नहीं स्वीकार उसको
कैद, नियमन, कूर अनुशासन
पंक्ति चालन
फॉल इन !"⁹⁴

पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता तथा औद्योगीकरण व नगरीकरण के फलस्वरूप भारत की सामाजिक परिस्थितियों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आया । संयुक्त परिवारों के स्थान पर आज व्यक्ति छोटे परिवारों में ही सुख खोज कर रहा है । क्योंकि आज का

व्यक्ति मानता है कि -

"भीड़ के स्पर्श बेहूदे लगते हैं
क्योंकि स्पर्शों की भाषा संदर्भों में पढ़ी जा सकती है ।"⁹⁵

वैयक्तिक जीवन मूल्यों की पहचान के प्रति पुरुष के साथ-साथ नारी भी सचेत है। इस दिशा में नारी में भी उल्लेखनीय चेतना दृष्टिगत होती है। आज की नारी पत्नी या सती के रूप में नहीं, बल्कि इन सबसे मुक्त एक स्त्री के रूप में रहना है -

"मेनका को नहीं चाहिए आश्रय
पत्नीत्व और सोभाग्य.....
वह इन सब स्थितियों से मुक्त
बनी रहना चाहती है स्त्री"⁹⁶

आधुनिकीकरण के परिप्रेक्ष्य में भारत में पाश्चात्य प्रभाव बढ़ने लगा है। पाश्चात्य आधुनिकता का अर्थ है - यांत्रिकता, बौद्धिकता और उपयोगितावादी दृष्टि। इस पर यह कहा जाना उचित रहेगा कि आज का व्यक्ति जो कुछ भी आत्मसात कर रहा है, वह केवल पाश्चात्य और नवीन से आकर्षित होकर नहीं, वरन् अधिकांशतः विश्व के सन्दर्भों में बौद्धिक धरातल पर उपयोगितावादी दृष्टि को अपना कर आत्मसात कर रहा है।

5.4 व्यक्ति-जीवन में बौद्धिकता का प्रवेश :

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में होने वाले परिवर्तनों से पूर्णतया प्रभावित होता रहता है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक जागरण ने समाज को पूर्णतया प्रभावित किया है। जिससे समाज का समूचा ढाँचा ही बदल गया है। आज व्यक्ति अंतरिक्ष में चन्द्र अन्य अन्य ग्रहों पर नजर लगा रहा है। प्राचीन कवियों ने चन्द्रमा को उपमा के रूप में अपने काव्यों में प्रयोग किया था, लेकिन आज विज्ञान ने उसी चन्द्रमा के रहस्यों का पता लगा कर यह साबित कर दिया कि चन्द्र किसी 'देव' का रूप नहीं है बल्कि एक उपग्रह मात्र है। इस तरह वैज्ञानिक चेतना ने कई पूर्व निर्धारित मान्यताओं पर प्रहार किया और अंधविश्वासों पर कुठाराघात किया।

आज व्यक्ति का जीवन विज्ञान और तकनीकी से संचालित है। विज्ञान के विकास के कारण हमारा समाज भौतिकवादी हो गया। देश में औद्योगीकरण तथा महानगरों के विकसित होने के कारण व्यक्ति की जीवन-पद्धति में उल्लेखनीय परिवर्तन परिलक्षित हुआ। समाज में आज व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया है कि दूसरे व्यक्ति से बात करने के लिए भी उसके पास समय नहीं है-

"बेड टी,
शेव, बाथ
ब्रेक फास्ट....
साइकिल से दफ्तर...
टी-लंच गपशप....
टन । टन । टन । टन ।
और मैं लौट लिया घर ।"⁹⁷

वर्तमान परिवेश में व्यक्ति की इस व्यस्तता पर महानगरीय सभ्यता का भी अपना प्रभाव है। आज इस महानगरीय सभ्यता ने व्यक्ति को पूरी तरह से घेर लिया है। जिसका स्पष्ट अंकन करते हुए दुष्यन्त कुमार लिखते हैं -

"इस शहर में वो कोई बारात हो या वारदात,
अब किसी बात पर खुलती नहीं हैं खिड़कियां ।"⁹⁸

आज व्यक्ति की यह व्यस्तता ही उसकी नियति बन गयी है। महानगरों में बढ़ते अजनबीपन, कृत्रिम व्यवहार और औपचारिकताओं पर प्रकाश डालते हुए डॉ. कुँवर बेचैन लिखते हैं -

"लम्बी प्यास, मुखौटे चेहरे,
सूखी हँसी, ढोंग, मुस्कानें,
हिलते हाथ, थके सम्बोधन,
अजनबीअयत, भूली पहचानें
जलती आंख सुलगते सपने
हाथ तापते हुए आदमी ।"⁹⁹

नगर जीवन की विसंगतियों के बीच आम व्यक्ति की अलगाव की भावना जगदीश चतुर्वेदी की इस कविता में देखी जा सकती है -

"मुझे ले चलो
 इस खोखली नगरी से बहुत दूर,
 मेरी अस्थियां गल रही हैं
 मेरी जिन्दगी उखड़ रही है ।
 घुट रही है मेरी दम तोड़ती सांसें ।
 मुझे उबकाई आ रही है ।
 यहां कोई भी नहीं है -
 कोई नहीं
 सभी हैं कटे हुए पेड़
 क्लोरोफार्म की ट्यूब में बद सहमें से कीड़े
 यहां कोई भी नहीं है,
 शायद मैं भी
 स्लहीनों का एक प्रेत हूँ ...
 शापग्रस्त प्रेत ।"¹⁰⁰

जीवन की आपाधापी में लोगों में आपसी परिचय और एक दूसरे के प्रति संवेदना समाप्त हो गयी है। आज सामाजिकता व्यक्ति के लिए एक औपचारिकता बन गयी है जिसके लिए उसे समय निकालना पड़ता है। इसीलिए वह पूछता है -

"क्या मैं छपाऊँ इशतहार ? क्या मैं बन जाऊँ किसी
 क्लब का सदस्य ? क्या मैं बैठे-बैठे करूँ
 सभी परिचित, अपरिचित को फोन ।"¹⁰¹

अपनी-अपनी जीविका के लिए निरंतर रूप से प्रयासरत व्यक्ति दूसरे से बचता हुआ गुजरने को अभिशप्त है, लेकिन व्यक्ति की यह स्थिति उसे नितांत अकेला बना रही है। अपने व्यस्ततम जीवन के बीच जब व्यक्ति अपने को अकेला पाता है तो वह गहसूस

करता है कि -

"सोने से पहले अपने वस्त्र
क्या आईने में
अपना अकेलापन देखने के लिए
उतारूंगा ?" ¹⁰²

फिर भी व्यक्ति का जीवन निरंतर रूप से प्रवाहित नदी के समान है । वह अपने को प्रगति का पहिया समझकर आगे बढ़ता है और उसी में अपना हित ढूँढ़ता है । इस प्रयास में व्यक्ति ने मशीन की तरह जीने की आदत डाली, जिसने उसे मशीन का दास बनाया । इसलिए कवि माथुर लिखते हैं कि विज्ञान ने मानव को एक मशीन बनाकर उसे अपने पहिये के नीचे पीस दिया है -

"चल पड़े भाप से नए मशीनों के पहिए
बन यंत्र-क्रांति के अग्रदूत ।
* * *

बस इसीलिए होगा विनाश
मानव का मानव पर
दुःख, दोहन, अनाचार
इसलिए कि रुकता नहीं कभी गति का पहिया ।" ¹⁰³

मशीनीकरण ने व्यक्ति को नगण्य बना दिया, जिससे रागात्मक वृत्तियों का उन्मूलन हुआ और मानवीय संबंधों की आत्मीयता को जड़ता ने घेर लिया है । विशेषकर उन्नीसवीं सदी में विज्ञान के द्वारा परमाणु और जीवाणु अस्त्रों के अविष्कार ने जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है -

"बीसवीं सदी ने हमें क्या दिया ?
मोटर, रेल, विमान, क्रांतियाँ....
यह बेतार, सवाक् चित्रपट,
कागज-मुद्रा आर्थिक-संकट,
गति-अतिशयता, वेगातुरता...

कहीं प्रपीड़न, कहीं प्रचुरता !
 इन सारे आविष्कारों ने
 जग को उन्नत किस तरह किया ?

* * *

मानव को मानव का भक्षण
 मानव को निज-संरक्षण का
 परवाना सबको बाँट दिया -
 जीवन संघर्ष बढ़ा यहाँ तक
 उस हाथ दिया, इस हाथ लिया ।¹⁰⁴

वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि के परिणामस्वरूप सदियों की भावुकतापूर्ण दृष्टि के स्थान पर तर्क संगतता का प्रवेश हुआ और व्यक्ति-जीवन में बौद्धिकता का विस्तार होने लगा। आज व्यक्ति जीवन में दिखावा का महत्त्व बढ़ रहा है। हर एक बात की उसकी अपनी प्रामाणिकता है -

"और मैं यह भी सोचता हूँ
 न्याय की तरह ही प्यार
 न केवल दिया जाए
 प्रदर्शित भी किया जाए ।"¹⁰⁵

व्यक्ति अपने प्यार को इस लिए प्रदर्शित करने की मांग कर रहा है ताकि उसकी प्रामाणिकता की जांच हो सके। व्यक्ति-जीवन में बढ़ती बौद्धिकता का यह एक उदाहरण है। जिसमें रागात्मक वृत्तियों के स्थान पर व्यक्ति प्रामाणिकताओं पर अधिक निर्भर होता जान पड़ता है। आज व्यक्ति प्यार भी ऐसा करना चाहता है कि जिससे वह बन्धन जैसा न लगे -

"जो सदा बाँधे रहे वह एक नारावास होगा

.....

मिलन हो, मुख चूम लें, आयी विदा, ले राह अपनी
 मैं न पूछूँ तुम न जानो, क्या रहा अंजाम मेरा ।"¹⁰⁶

अतः वह ऐसे प्रेम में आस्था नहीं रखता जो उसके लिए रूटीन वर्क सा लगे।

इसीलिए इस संबंध में प्रेम के स्थान पर किसी भी शब्द रखें, उसके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता -

"पर सच तो यह है कि यहाँ
या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता
तुमने जहाँ लिखा है 'प्यार' वहाँ लिख दो 'सड़क'
फर्क नहीं पड़ता ।"¹⁰⁷

बौद्धिकता से ग्रस्त आज का व्यक्ति उसे अधिक सुखी और भाग्यवान समझता है जिसे अपने जीवन में कोई लक्ष्य व आशय नहीं हो -

"आमाशय । यौनाशय । गर्भाशय
जिसकी जिन्दगी का यही आशय
यही उसका भाग्य
कितना सुखी है वह
भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य ।"¹⁰⁸

परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति सुख से जीने का हर संभव प्रयास करता है। इसके लिए भौतिक सुख-सुविधाएँ जुटाता है और प्रत्येक क्षण को पकड़ने का प्रयास करता है। जिससे व्यक्ति-जीवन में समय का अभाव लगने लगा। प्रत्येक क्षण उसके लिए महत्वपूर्ण लगने लगा है और प्रत्येक क्षण को वह पकड़ना चाहता है। व्यक्ति का यह क्षणवाद यांत्रिक सभ्यता की देन है जिससे व्यक्ति भीड़ में भी अपने को अकेला पाता है जिसका परिणाम वह खुद जानता है -

"राजमार्ग--कोलाहल--पहिए
कांटेदार रंग गहरे
यंत्र सभ्यता चूस-चूस कर
फेंके गये अस्त चेहरे
* * *
यह अधनंगी शाम और
यह चुभता हुआ

अकेलापन

मैंने फिर घबराकर अपना शीशा तोड़ दिया ।"¹⁰⁹

यथार्थ की स्वीकृति के कारण उसके धार्मिक और सामाजिक बन्धन क्षीण होते जा रहे हैं । उसे घर के बाहर और घर के अन्दर के रिश्ते-नातों को यथावत बनाये रखना कठिन हो रहा है । जिसका कारण बताते हुए कवि विनय लिखते हैं -

"विकास की प्रक्रिया यह मेनका
कि सम्बन्धों को काटते-काटते आदमी
जुड़ जाता है नये सम्बन्धों से
अकेला भागते हुए पाता हूँ अपने को
सबके साथ कई बार ।"¹¹⁰

अपनी इस विकास की दौर में व्यक्ति अकेला हो जाता है तो भी उसे कहीं भी व किसी भी मोड़ पर देखा जा सकता है । यह एक ऐसी ट्राजडी है जहाँ व्यक्ति सम्पूर्ण भी डूबकर भी एकाकीपन की अनुभूति उसे छोड़ती नहीं -

"मैं जब हवा की तरह
दृश्यों के बीच से गुजरता हुआ
अकेला होता हूँ ;
तो क्षण भर के लिए
मुझे कहीं भी देखा जा सकता है
किसी भी दिशा में
किसी भी मोड़ पर
किसी भी भाषा के अज्ञात
शब्द कोश में ।"¹¹¹

अतः व्यक्ति एक ओर सब कुछ अपने में समेट कर चलता है और दूसरी ओर अपने को सबको छूटते हुए भी महसूस करता है । इसीलिए उसकी यह चिंता हमेशा वरकरार रहती है कि -

"सब के बीच से, सबसे असंपृक्त

* * *

कब तक ये गलियाँ
अलग-अलग बँटी हुयी
ऐसे ही सहती रहेंगी
होने की पीड़ा ^{"112}

बौद्धिकता से ग्रस्त व्यक्ति-जीवन में पहचान बनाने की भी लालसा कम होती है और ऐसे जीवन कभी-कभी निरर्थक भी प्रतीत होते हैं जिसका समाज पर कोई प्रभाव भी नहीं पड़ता। व्यक्ति-जीवन की यह निरर्थकता समाज की बढ़ती जटिलताओं की ही सूचक है -

"जिसने कभी कोई बड़ा काम
नहीं किया अपनी देह/अथवा अपनी चेतना में इस उम्र तक
जटिल हुए किन्तु कोई भी प्रतिमा बनाने के योग्य
नहीं हुए उसके अनुभव ।"¹¹³

व्यक्ति जीवन की इस निरर्थकता से समाज के प्रति उसकी आस्था टूट रही है। आज वह महसूस करने लगा है कि समाज में भाईचारा का नहीं बल्कि अजनबीपन को ही महत्व दिया जा रहा है। फिर भी वह परिवेशजन्य परिस्थितियों में न चाहते हुए भी व्यक्ति इस बौद्धिकता का बोझ सिर पर लाद कर ढो रहा है और उसी को नियति मान कर चल रहा है।

5.5 व्यक्ति-जीवन में अस्मिता की खोज :

व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित हैं। समाज के अभाव में व्यक्ति की और व्यक्ति के अभाव में समाज की परिकल्पना नहीं की जा सकती। समाज में रहते हुए व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। यह उसका सामाजिक यथार्थ है और परिवेशगत यथार्थ से उसका स्वभाव, व्यवहार, धारणाएँ, मान्यताएँ और प्रतिक्रियाएँ परिचालित होती हैं। हर व्यक्ति समाज में अपनी इयत्ता सुरक्षित रखना चाहता है। वह चाहता है कि समाज उसे पहचाने और उसे सम्मान दे। इसके लिए वह निरंतर प्रयत्नशील रहता है।

आधुनिक युग में औद्योगिक प्रगति और शहरीकरण ने व्यक्ति-मानव को नगण्य बना दिया है और वह अपनी जीविका को निभाने में ही थक जाता है । उसके लिए -

"कुछ मत सोचिए
यदि जिन्दगी
गुजरती है
बढिया ।" ¹¹⁴

आज व्यक्ति को समाज में अपने अस्तित्व तक को बनाया रखना असंभव लगने लगा है -

"या फिर मैं है।
किसी बीते साल के सीले कलंडर की एक
बस तारीख जो हर साल आती है ।" ¹¹⁵

डॉ० देवराज व्यक्ति के अस्तित्व के घिर जाने के कई कारण मानते हैं, जैसे -

"भय-संशय, नास्तिभाव, ऊब, अकेलेपन से
नर का अस्तित्व घिरा,
क्या चिंता : महाकाल-धारा में
बुद-बुद-सा कौन उठा, मिटा गिरा --
फिर-फिर यात्रा-भगदड,
फिर-फिर रे ऊब-श्रान्ति ।" ¹¹⁶

अतः परिवेशगत दबाव व नियंत्रण हो या व्यक्ति की अपनी भाव-चिंतन हो, कारण जो भी हो इससे व्यक्ति चेतना कुण्ठित हो रही है। वह अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता को हर समय खतरे में पाता है। इस स्थिति से बच निकलने के लिए व्यक्ति निरंतर रूप से प्रयासरत रहता है, लेकिन परिवेशगत विषमता की वजह से उसे सफलता हाथ नहीं लग रही है। जिससे व्यक्ति सिकुड़ जाता है, फिर भी उसकी चिंता दूर नहीं होती। इस सन्दर्भ में व्यक्ति-मानव के आक्रोश को शब्दबद्ध करते हुए श्रीकान्त वर्मा लिखते हैं -

"मगर सिकुड़ तो कहां तक सिकुड़ूं ।
मैं इस कदर

सिकुड़ चुका हूँ कि
 छोटे से छोटे
 अवसर के छल्ले से
 अपने को साफ साफ बचाकर
 गुजर सकता हूँ ।
 माचिस की डिबिया में घर
 जेब में भविष्य,
 हाथ में ट्रांजिस्टर सेट !
 सिकुड़ूँ तो कहां तक
 सिकुड़ूँ !
 क्या मैं पड़ा रहूँ अपनी स्त्री की जांघ की दराज में ?
 शिव ! शिव ! मैं अपनी कल्पना पर छिपा लेता हूँ
 मुँह लाज में ।¹¹⁷

अपनी अस्मिता की तलाश लिए भटकते हुए व्यक्ति भौतिक सुविधाओं में जुटाने में व्यस्त होने लगा ताकि उसे व्यक्ति रूप में ना सही, कम-से-कम भौतिक रूप से किसी प्रकार की पहचान मिले । क्योंकि वर्तमान परिवेश में बढ़ती बौद्धिकता के परिप्रेक्ष्य में धन की महत्ता बढ़ रही है । समाज में उस व्यक्ति को जरूर पहचान मिल रहा है जिसके पास आवश्यकता से अधिक धन हो और समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं की भरमार हो । भौतिक रूप से पहचान बनाने की कोशिश में व्यक्ति-जीवन व्यस्तता का शिकार हो रहा है जिससे आज व्यक्ति को दूसरों की उपस्थिति में भी अनजानेपन से गुजरना पड़ रहा है -

"सहमति नहीं, भाषा नहीं, प्रस्ताव नहीं ।
 कोई अनुभव नहीं ।
 इतनी समीपता,
 इतना नैकट्य,
 इतना सहवास
 किन्तु स्पर्श में
 पुलक नहीं ।
 हर दिन मकान की पीठ पर नये मकान
 हर दिन

शहर की सीढ़ी पर
नया शहर ।"¹¹⁸

वास्तव में -

"नगर...भवन....सड़कें....योजनाएँ....
लेकिन निर्माण की इस दौड़ में नहीं बन पाया है
अब तक....एक अदद आदमी"¹¹⁹

एक अदद आदमी की तलाश में धूमिल के पात्र 'मोचीराम' कहता है -

"न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी
एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए पड़ा है ।"¹²⁰

अपनी पहचान खोते रहे आम व्यक्ति आज समाज को ही इसका कारण मानने लगा
और बेईमानी और अन्याय से भरे समाज की विकृतियों का मुकाबला भी करने लगा है -

"या तो 'ना' कहकर
यह कोठरी हड्डी मांस की
छोड़ दो
या फिर पैसे करो दाँत
खाल ओढ़ लो
रे SS मत करो
मुझे अब तुमसे हमदर्दी नहीं रही ।"¹²¹

व्यक्ति जब समाज के मुकाबले में अपने को असमर्थ पाता है, तब यह महसूस -
करने को विवश हो जाता है कि -

"मुझे होना चाहिए एक ठूँठ
जो खुशी से फूल नहीं जाता

मुरझाता नहीं
 पाला पड़ने पर रंग नहीं बदलता
 रह लेता है कहीं भी
 गहरी साँस लेता हुआ ।"¹²²

आज के व्यक्ति के लिए अपने अस्तित्व को महसूस करने की एक ही प्रक्रिया बची रही है - वह है साँस लेने व छोड़ने की -

"सारा शहर छान डालने के बाद
 मैं इस नतीजे पर पहुँचा
 कि बस इतने बड़े शहर में मेरी बड़ी पूँजी है
 मेरी चलती हुई साँस
 मेरी छाती में बन्द मेरी छोटी सी पूँजी ।"¹²³

अपने अस्तित्व की तलाश में और अस्मिता की खोज में जब व्यक्ति थक जाता है तब वह सोचता है कि उसके पास समाज से दूर भागने के सिवाय कोई विकल्प नहीं है -

"क्यों नहीं है मेरे लिए कोई नाम कोई नदी कोई चिड़िया
 कोई फूल कोई सिद्धांत
 कोई दरख्त कोई राजनीतिक दल कोई जंगल
 कोई सांप कोई गांव,
 कोई स्त्री कोई सड़क कोई संगीत कोई नशा
 कोई प्रेम कोई घृणा,
 कोई घर कोई आंगन कोई छांव
 वापस लौट जाऊँ जहां एक बार फिर से अपनी यात्रा
 शुरू करने के लिए ।"¹²⁴

समाज के प्रति व्यक्ति की यह उदासीनता उसे अजनबीयत की ओर ले जाती है। वास्तव में अजनबीपन की व्यवस्था वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने ही परिचित लोगों और वस्तुओं के साथ अपनी पहचान और संबंध कायम नहीं रख पाता है। आज के

परिवेश में अजनबीयत को अपनाने के लिए व्यक्ति विवश है -

"यह मैं हूँ
कि जिसमें अविराम भीड़ें रूप लेती हैं
उमड़ती आती है
यह भीड़ है
कि उसमें मैं बराबर मिटता हुआ
डूबता जाता हूँ ;
ये पहचाने हैं
जिनसे मैं अपने को जोड़ नहीं पाता
ये उलझाये हुए हैं
जिन्हें मैं छोड़ नहीं पाता ।"¹²⁵

व्यक्ति की यह विवशता उसे समाज से ही नहीं, बल्कि अपने आपे से भी अजनबी बना रही है। वास्तव में जो व्यक्ति पहले दूसरों के बीच अजनबी होता है, उसे अपने आप से भी अजनबी होने में ज्यादा देर नहीं लगती। अपने आप से अजनबी व्यक्ति का लक्षण यह है कि उसे अपना रूप भी स्पष्ट नहीं हो पाता -

"निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पणों में चलते हुए
सहसा मेरी एक देह
तीन देह हो गयी
उग कर एक बिन्दु पर
तीन अजनबी साथ-साथ चलने लगे
अलग-अलग दिशाओं में
और यह न ज्ञात हुआ
इनमें कौन मेरा है ।"¹²⁶

अतः परिवेशगत सन्दर्भ में अपनी अस्मिता की खोज करते समय व्यक्ति को अनिवार्य रूप से अजनबीयत को झेलना पड़ता है। व्यक्ति-जीवन की नियति बन जाती इस

अजनबीपन की अवस्था से गुजरते समय व्यक्ति को अनेक स्तरों पर बिखरता है -

"मेरी कोई पीढ़ी नहीं ओ बुजुर्गों
कोई पीढ़ी नहीं,
वह मैं जिसको पुकारते हैं आप
शायद कहीं हो
शायद कहीं
मंच पर दृश्य परिवर्तन के बीच कहीं
जो अंधकार आता है
जिसका कोई दर्शक नहीं कोई श्रोता नहीं
उसका अनजाना-अनदेखा
अस्तित्व
आप नहीं जानते, नहीं पहचानते
धृष्टता क्षमा करें ।"¹²⁷

अपने अस्तित्व को मंच के दृश्य-परिवर्तन के बीच के अंधकार के रूप में पाने वाली आज की पीढ़ी इस बात को लेकर चिंतित है कि

"डर यह नहीं है
समूची व्यवस्था द्वारा निर्वासित कर दिए जाने पर
इतिहास में कहां खोजूंगा
स्थान
डर तो यह है कि
जिस रोज प्रश्न करने योग्य हो जाएगा
मेरा बच्चा
वह करेगा नहीं विश्वास
कि मानस मैथुन करती
इन तथाकथित बुद्धिजीवियों की भीड़ में
मैं नहीं था शरीक
किसी भी स्तर पर ।"¹²⁸

अपने इसी डर को लेकर आज की पीढ़ी अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए निरंतर प्रयासरत रहती है, लेकिन वह जानती है कि इसमें सफलता की संभावना सीमित है। ऐसे ही प्रयासरत एक व्यक्ति अपनी सफलता को इस तरह पाता है कि -

"अब मेरा अस्तित्व भी कुछ ऐसा है
जैसे ताजा कमल
खोलते पानी में ।" ¹²⁹

स्पष्ट है कि यहां व्यक्ति अपने अस्तित्व की तलाश तो कर सका, लेकिन उसका कोई अर्थ नहीं निकाल पाया। फिर भी व्यक्ति का प्रयास तो हमेशा जारी रहता है। सीमित संभावनाओं के बावजूद भी व्यक्ति अपने अस्तित्व को एक रूप देने की बार-बार चेष्टा करता है। अपने इस प्रयास में यदि उसे अपना व्यक्तित्व खोखला महसूस होता हो, तो भी कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी -

"मैं हूँ
मेरा व्यक्तित्व है
मेरा पलस्तर रहित
दीवारों की दरारों सा
खोखला व्यक्तित्व
जो कभी भी ढह सकता है ।" ¹³⁰

व्यक्ति की चिंता तब बढ़ जाती है जब उसे यह मालूम होता है कि उसका व्यक्तित्व उसका अपना नहीं है। क्योंकि परिवेश के अनुकूल अपने को डालने के प्रयास में व्यक्ति खण्ड-खण्ड होकर जीने का भी अक्सर उसे अभ्यास करना पड़ता है -

"तुम देखोगे
कि इस तरह टुकड़ों में जीना
बहुत कठिन नहीं है
और इसका नशा वे सब जानते हैं
जो अपने-अपने स्वर्ण-नगरों में पहुंच कर
सार्वजनिक घटना बन गए हैं ।" ¹³¹

व्यक्तित्व के खण्डित होने की स्थिति एक ऐसे दुविधाग्रस्त मन की स्थिति है जिसमें व्यक्ति को अनिवार्य रूप से मुखौटा लगाना पड़ता है। अतः जो व्यक्ति अपने को टुकड़ों में पाता है, वह अपने इस प्रत्येक टुकड़े के लिए अलग-अलग नाम देने और उसे अलग-अलग मुखौटे पहनाने को विवश हो जाता है -

"एक दीखने वाली मेरी इस देह में
 दो 'मैं' हैं ।
 एक मैं
 और एक पिट्टू ?
 मैं तो, खैर, मामूली सा क्लर्क हूँ
 पर मेरा पिट्टू ?
 जीनियस है ।"¹³²

यह मुखेटाधर्मिता भी आज के व्यक्ति का अनिवार्य लक्षण बन गया है। पर विडंबना यह है कि विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न मुखौटा लगाने वाले व्यक्ति खुद अपने चेहरे से अपरिचित होने लगा है। इस परिप्रेक्ष्य में अपने चेहरे को भीड़ में तलाशने के सिवा उसके पास कोई विकल्प नहीं रहता। जब व्यक्ति भीड़ में अपने को तलाशने की प्रक्रिया शुरू करता है तब उसे अनिवार्य रूप से अकेलापन के ही रास्ते से गुजरना पड़ता है और जब व्यक्ति अपने इस अकेलापन से घबराता है, तो उस समूची अस्मिता से ही, जिसकी खोज अब भी जारी है, नफरत करने लगता है -

"चकनाचूर देह और खोखला दिमाग और बीमार आत्मा का
 बोझ ढोता हुआ --

* * *

एकदम अकेला हूँ ।

* * *

मेरी समूची अस्मिता बुरी तरह विकृत हो गयी है
 मुझे अपने नाम से
 अपनी परछाई से
 अपनी आवाज से
 अपने अस्तित्व से नफरत हो गई है ।"¹³³

अतः अपनी अस्मिता की खोज से निकले व्यक्ति को जब परिवेशगत सन्दर्भ में अपने को प्रस्तुत करना होता है, तब उसे खुद उस अस्मिता से नफरत करना पड़ रहा है जिसकी तलाश में वह भटका है। यही आज के व्यक्ति की नियति है।

5.6 संघर्ष - जीवन की नियति

आधुनिक परिपेश में व्यक्ति अपने जीवन के निर्वाह के लिए और अपनी जिजीविषा के लिए निरंतर रूप से प्रयासरत है। उसके इस प्रयास में उसे सतत संघर्षरत भी रहना अनिवार्य हो गया है। आज का व्यक्ति एक ओर वह अपनी जीविका के लिए संघर्षरत है दूसरी ओर बौद्धिकताप्रस्त समाज में अपनी पहचान को लेकर चिंतित है। इस परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति के लिए संघर्ष एक नियति बन गयी है। जिससे वह अपने को इस तरह महसूस कर रहा है कि -

"मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूँ
प्रारब्ध जिसका गर्भ से ही हो चुका निश्चित।"¹³⁴

आधुनिक युग में परिवर्तित परिवेश में व्यक्ति को आर्थिक रूप से और सामाजिक रूप से उसे विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इससे वह तनावपूर्ण जीवन बिताने के लिए मजबूर है -

"खाली हाथ और भरे मन
रेत के ऊपर
आकाश के नीचे
कुहरे की नदी में
चित लेते हुए
मैं सूर्य मांगता हूँ
मुझे बर्फ मिलती है,
सिर्फ शब्द क्षण नहीं मिलता
शेष समय की भट्टी में
अतिरिक्त सैकड़ों शब्द सेंकता हूँ

सिर्फ वही जगह छूटती है
 जहां कुछ हो सकता हूँ
 वैसे फेंकता हूँ अपने को
 शहरों के बीच
 सड़कों पर
 लोगों के भीतर ।"¹³⁵

आज के यंत्र-युग की व्यस्तता के बीच परस्पर संघर्षशील स्वार्थों की कठोर प्रतियोगिता का सामना करने वाले व्यक्ति की वेदना इसमें स्पष्ट परिलक्षित होती है। वास्तव में यह वेदना वैयक्तिक स्तर पर अपनी पहचान बनाने की कोशिश में असफल व्यक्ति की है। वर्तमान युग में व्यक्ति को कई स्तरों पर संघर्ष को अपनी नियति मानकर चलना पड़ रहा है। जैसे, आर्थिक दबाव से चिंतित व्यक्ति के लिए जीविकार्जन एक समस्या है। इस संबंध में व्यक्ति अपने अनुभव से यह कहता है कि -

"जीवन के अनुभव का एक बोल कहता हूँ -
 बाप कभी न बनना पैसे नहीं यदि,
 बेटे और बेटियों के क्रोध से बचना ।"¹³⁶

पेट भरने की समस्या तो व्यक्ति को बहुत विवश करती है -

"खाल हड्डियों के छोड़े इससे पूर्व
 आंखों में भर रही है पीड़ा की कंपकंपाती दहशत ।
 मुझे मंजूर है इसकी सीमा तक जाना ; किन्तु
 संशय और भय के मिले-जुले रंगों में लिपटा
 ठिठक खड़ा हूँ उल्टा-सुल्टा
 जिधर से शुरू करूँ
 पेट बीच में पड़ेगा"¹³⁷

जब पेट की समस्या मिट जाती है तो उसके सामने दूसरी समस्या आ खड़ी हो जाती है। समस्याओं के इस सिलसिले से तंग आकर आज की युवापीढ़ी अपनी इस स्थिति के लिए अपने पूर्वजों को दोषी ठहराती है और कहती है उन्होंने ही उसे इस अनचाहा

जीवन प्रदान किया है जिसे भुगतने के लिए अभिशप्त है -

"ओ पिता
 मैं ने तो तुमसे माँगा नहीं कुछ भी
 कुछ भी नहीं चाहा
 यह दिशाहीन सुबह
 यह लक्ष्य-भ्रष्ट शाम
 यह धर्म और जाति से गंधाता हुआ नाम
 यह घिसट-घिसट चलती हुई भाषा
 यह गैर कानूनी गति-विधि निरोधक अधिनियम
 यह एड़ी से चोटी तक कर्ज में डूबा हुआ भाविष्य ।"¹³⁸

समस्याओं से भरा जीवन आज के व्यक्ति के लिए एक समुन्दर जैसा लगता है,
 जिसका उसे कोई आर-पार नहीं दिखता -

"त्रिलोचन जो कुछ देख रहे हैं, वह व्यापक और विशाल है -
 जीवन समुद्र देख रहा हूँ अपार है
 उत्तुंग ऊर्मि श्रृंग कहाँ आर-पार है"¹³⁹

समुन्दर जैसे जीवन में जिन्दगी की लड़ाई लड़ते-लड़ते व्यक्ति कभी-कभी अपने ही
 घर में भटक जाता है, तब उसका अता-पता करना भी मुश्किल हो जाता है, क्योंकि -

"मेले में भटके होते तो कोई घर पहुँचाता
 हम घर में भटके हैं कैसे ठौर-ठिकाने आयेंगे ।"¹⁴⁰

व्यक्ति जीवन में यह भटकाव समाज से ही शुरू होता है। शहरीकरण के परिप्रेक्ष्य
 में आज के व्यक्ति को ऐसे नगरों में रहना पड़ रहा है, जहाँ उसका कोई परिचय मात्र
 मिलना असंभव है -

"खाने को जहर और रहने को शहर मिलने के बाद भी
 तुमसे यहां ज्यादा नहीं रहा जायेगा,

कोई भी दिन तुम्हें उजाले से पीटता हुआ
 तुम्हारी व्याकुलता को भीड़ में कर देगा
 जहां कोई संबंध कोई कुछ भी तुम्हें
 तुम्हारा परिचय नहीं देगा ।"¹⁴¹

व्यक्ति का अस्तित्व-जनित इस आंतरिक संघर्ष का अंकन करते हुए कवि सर्वेश्वर लिखते हैं -

"आज के जमाने में
 आदमी से ज्यादा लोग
 पोस्टरों को पहचानते हैं
 वे आदमी से बड़े सत्य हैं
 * * *

पोस्टर

* * *

जिनमें दिल दिमाग आत्मा कुछ भी नहीं है
 महज रंग -- गहरा भड़कीला रंग,
 * * *

सब दूसरों के हैं
 * * *

वे आज के युग में
 आदमी से अधिक बड़े सत्य हैं
 उन्हें सब पहिचानते हैं ।"¹⁴²

वर्तमान व्यक्ति-जीवन की विडंबना यह है कि परिवेशगत सन्दर्भ में वह ना तो इस संघर्ष को झेलने के लिए सक्षम है और ना ही इससे बच निकलने के लिए जिन्दगी से दूर भागने में वह समर्थ है -

"भागना चाहते हुए भी
 भाग नहीं पा रहा हूँ
 इस गले से छिपटी हुई
 जिन्दगी से ।"¹⁴³

व्यक्ति के इस जीवन-संघर्ष में उसका साथ देने वाला भी कोई नहीं है -

"लम्बे रास्ते पर
कोई भी नहीं देता साथ
सब आँखों के सामने ही
अनुपस्थित हो जाते हैं ।"¹⁴⁴

क्योंकि परिवेशगत विषमताओं के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति-जीवन में बढ़ती संकुचितता और स्वार्थ-प्रवृत्तियों से व्यक्ति-व्यक्ति के बीच आत्मीयता समाप्त होती जा रही है। ऐसे में अपने ही लोगों को अनुपस्थित पाने वाले व्यक्ति की यह संवेदना अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होती ।

जीवन की नियति का रूप धारण करने वाले इस जीवन-संघर्ष को लेकर व्यक्ति चिंतित है। अपनी इस चिंता से निकल पाने के लिए व्यक्ति को तरह-तरह के उपाय करने पड़ते हैं। ये उपाय भी सबके अलग-अलग होते हैं। इस संघर्ष से बच निकलने के लिए अपनी ही कविता का सहारा लेते हुए एक कवि लिखते हैं -

"कविता.....
शायद एक गुफा है
जहाँ लड़ाई से बचने के लिए
मुझे बार-बार आना है ।"¹⁴⁵

क्योंकि उसके लिए

"इस घातक व्यवस्था में
हर पतली त्वचावाला आदमी अरक्षित है ।"¹⁴⁶

आज परिवेशगत विसंगतियों के बीच व्यक्ति यह महसूस करता है कि उसने जीवन को नहीं जिया, बल्कि जीवन ने ही उसे जिया है और बूँद-बूँद पीकर छोड़ दिया -

"मैं क्या जिया
मुझको जीवन ने जिया --

बूँद-बूँद कर पिया, मुझको
पीकर पथ पर खाली प्लाले-सा छोड़ दिया ।"¹⁴⁷

फिर भी व्यक्ति अपने भविष्य के प्रति हमेशा आशापूर्ण दृष्टिकोण ही अपनाता है और सोचता है कि आज नहीं तो कल उसे अच्छा अवसर मिल सकता है और उसके जीवन में प्रगति होगी -

"फिर उठेगा आदमी
और सूरज को मिलेगी रोशनी
सितारों को जगमगाहट मिलेगी
कफन से लिपटे हुए सौंदर्य को
फिर किरन की नरम आहट मिलेगी ।"¹⁴⁸

इसमें भविष्य के प्रति आश्वस्त व्यक्ति का ही नहीं, उस व्यक्ति का भी रूप मिलता है जिसमें असीमित आत्मविश्वास और जटिल समस्याओं का भी सामना करने की अपूर्व क्षमता दृष्टिगत होती है ।

उपसंहार

सृष्टि में व्यक्ति का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। विश्व में व्यक्ति को सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टि से पारिभाषित करने का प्रयास किया गया। जिसमें वह कहीं मस्तिष्क से संपन्न प्राणी है, कहीं और उसे धरती की आत्मा तक स्वीकार किया गया है। अस्तित्ववादी एवं व्यक्तिवादी विचारधाराओं ने पहली बार व्यक्ति के अंतरंग पर प्रकाश डाला है। इनके अनुसार, व्यक्ति अनादिकाल से अपने एक स्वतंत्र अस्तित्व एवं व्यक्तित्व के लिए संघर्षशील है। क्योंकि समाज की एक इकाई होने के नाते व्यक्ति को सामाजिक मान्यताओं एवं अवधारणाओं का भी अनिवार्यतः पालन करना पड़ता है।

व्यक्ति-महिमा की स्थापना के प्रयासों में व्यक्तिवादी चिंतन एवं जीवन दर्शन का विकास हुआ है। इसके अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व एवं अस्तित्व उसी सीमा तक होता है, जिस सीमा तक वह 'अपना' सिद्ध करता है। अस्तित्ववादी एवं व्यक्तिवादी विचारकों ने व्यक्ति के उस पक्ष पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है जिसमें वह स्वतंत्र होने के लिए अभिशप्त है। यदि वह स्वतंत्रता नहीं नहीं चाहता, तो समझ लेना चाहिए कि उस पर कितने दबाव हैं।

व्यक्ति के महत्व को धार्मिक, नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से देखने के विभिन्न प्रयासों की पृष्ठभूमि हमें पश्चिम में ही मिलती है, जिसने समाज को एक तर्कपूर्ण बौद्धिक दृष्टिकोण दिया है। इसी के अंतर्गत आज व्यक्ति अपने वैयक्तिक मूल्यों के प्रति सजगता व्यक्त करने लगा है। जबकि भारतीय परंपराओं में भी व्यक्तिवाद का अपना एक स्थान है। 'गीता' में व्यक्तिवाद को एक साधना के रूप में स्वीकार किया गया है। अर्थात् व्यक्तिवाद का विकास हमारे देश में बहुत समय पहले ही हुआ था, लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी में आकर इस पर जोर दिया जाने लगा। यद्यपि इस चेतना को 'व्यक्तिवाद' नाम देने का श्रेय पश्चिम को मिलता है, तथापि इसका विश्लेषण हमें महाभारत काल से लेकर अब तक के साहित्य में लगातार मिलता ही रहता है। हर एक काल में साहित्यकारों ने व्यक्ति एवं उनके विचारों पर अपने-अपने ढंग से प्रकाश डालने का प्रयास किया है। हमारे यहाँ अब तक का उपलब्ध साहित्य इसको प्रमाणित करता है।

आधुनिक काल में समसामयिक सुधार अन्दोलनों, पाश्चात्य संस्कृति, आधुनिक चिन्तन धारा, औद्योगिक क्रान्ति और विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने आम व्यक्ति को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है जिसके कारण सदियों की भावुकतापूर्ण दृष्टि के स्थान पर तर्क का अपना स्थान ग्रहण करने लगा है। परिवर्तन के इस प्रक्रिया में पुरुष के साथ-साथ नारी भी सक्रिय रही है। आत्मगौरव व स्वाभिमान के भावों के परिप्रेक्ष्य में अब उसमें भी अपने अस्तित्व के प्रति सजगता दिखाई देती है।

समाज समान आदतों लक्ष्यों, तथा विचारवाले व्यक्तियों का समूह है जिसमें रहना व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकता न होकर व्यक्तिगत आवश्यकता समझी जाती है। क्योंकि सामाजिकता मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण गुण है। समाज व्यक्ति को वह अवसर प्रदान करता है जिसमें उसके व्यक्तित्व का निर्माण व विकास संभव होता है। अस्तित्वादी व व्यक्तिवादी विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में आज समष्टिगत चिन्तन का स्थान व्यक्तिगत चिन्तन ग्रहण कर रहा है। परिवेशगत परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति बहुत कुछ बौद्धिक व तार्किक बनता जा रहा है जिसे किसी परंपरागत एवं पूर्व निर्धारित जीवन दृष्टि से समझना या परखना असंभव है। आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण एवं औद्योगिकीकरण के कारण आज समष्टि के स्थान पर 'व्यक्ति' को महत्व दिया जा रहा है। वर्तमान परिवेश में व्यक्ति-स्वातंत्र्य की अपूर्व चेतना देखने को मिलती है।

साहित्य में व्यक्ति की अनुभूतियों का अभिव्यक्तीकरण मिलता है। वास्तव में समसामयिक परिस्थितियाँ व्यक्ति पर अपना प्रभाव डालती हैं और उन परिस्थितियों के प्रति लेखक के मन में कुछ विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है, यही प्रतिक्रिया साहित्य सृजन का हेतु है। इस प्रतिक्रिया के पीछे लेखक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व क्रियाशील रहता है। साहित्य भावनात्मक स्तर पर व्यक्ति का संस्कार करता है और उसका समसामयिक स्थिति के साथ साक्षात्कार कराकर, उसे आगे बढ़ने में प्रेरणा देता है। साहित्य की हर विधा अपनी और रचनाकार के सामर्थ्य के अनुसार व्यक्ति को अभिव्यक्ति करती है। जबकि साहित्यिक विधाओं में कविता का अपना स्थान है।

यह विदित है कि साहित्य में, विशेषकर कविता में व्यक्ति-चेतना का अंकन प्रथमतः पश्चिम में ही मिलती है। पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कविता से ही यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। पश्चिम में अठारहवीं शताब्दी के बाद प्रचलित स्वच्छन्दतावादी

काव्यधारा, जो भाव और शिल्प के स्थूल नियमों और परंपराओं पर बल देने वाली क्लासिक काव्य पद्धति के प्रति विद्रोह के रूप में विकसित हुई थी, से ही व्यक्ति-स्वातंत्र्य को प्रमुखता मिलने लगी है। वास्तव में रोमान्टिक भावना व्यक्ति-मानव के निजी अधिकारों की उद्घोषणा करती है, समष्टि के सामने सिर झुकाने के विरुद्ध व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में, विशेषकर छायावादी काव्य से ही व्यक्ति-चेतना का यह प्रतिफलन दृष्टिगत होता है। छायावाद और पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद में समान प्रवृत्तियाँ हैं। यद्यपि व्यक्ति-जीवन का अंकन करने की यह प्रवृत्ति बहुत पहले से ही मिलती है, लेकिन व्यक्ति को केन्द्र बनाकर वैयक्तिक अनुभूतियों को महत्व देने प्रवृत्ति तो भारत में स्वतंत्रता के बाद लिखी हुई कविताओं में ही अधिक पायी जाती है। अतः यह कहा जा सकता है कि छायावादोत्तर काल से लेकर आज तक व्यक्तिवाद को प्रमुखता मिलती रही।

व्यक्ति के तनाव को अधिक गहराई से उभारने का श्रेय आधुनिक हिन्दी कविता को ही मिलता है। सभी आधुनिक हिन्दी कवियों ने व्यक्ति-चेतना को अंकित करने का सफल प्रयास किया। इस संबंध में किसी भी कवि की उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्ति-जीवन की संश्लिष्टता का वास्तविक स्रोत देश-काल एवं वातावरण का तथा उसमें पलने वाले आधुनिक व्यक्ति-जीवन को विशेषताओं के साथ चित्रण करने में ये कवि सक्षम रहे।

सन्दर्भ

1. पर्सनालिटी ए साइकोलॉजिकल इंटरप्रेशन, गार्डन डब्ल्यू एलफोर्ट - पृ० 35
2. द कॉन्सेप्ट ऑफ मैन (इंट्रोडक्शन), सं. राधाकृष्णन एवं पी.टी. राजू - पृ० 69
3. कार्ल मार्क्स एंड एफ. एंजिल्स - वॉल्यूम 3, पृ० 558
4. Alexis de Tocquesille who coined the word, described it in terms of a kind of moderate selfishness, disposing men to be concerned only with their own small circle of family and friends.
- Encyclopedia Britanica - Volume - 12, Page. 257
5. The individualistic theory of human nature hold that the interests of the norml dult are best served by allowing him maximum freedom and responsibility for choosing his objectives and the means for obtaining them and acting accordingly,
- Encyclopedia Britanica - Volume - 12, Page. 258
6. मानव मूल्य और साहित्य - डॉ. धर्मवीर भारती - पृ० 123
7. जैन दर्शन और अन्य भारतीय दर्शन(प्रथम भाग), श्री भरतसिंह उपाध्याय, पृ० 169
8. The effirmation of the overiding importance of the individual represents indeed the crucial turning point in the history of society as well as of literature.
- Romanticism in perspectixe, Page 55, Lilian R. Furst
9. The affirmation of individualism was central to the romantic creed in all three literatures, although the interpretation given to the principle varied considerably both in emphasis and scope from one country to another.
- Romanticism in perspectixe, Page 114, Lilian R. Furst
10. संसद से सडक तक, धूमिल, पृ० 91
11. नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, मुक्तिबोध, पृ० 82
12. कविता की परख, रामधारीसिंह 'दिनकर' पृ० 141
13. 'जागो फिर एक बार', परिमल, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृ० 158
14. छायावादोत्तर हिन्दी कविता, डॉ० रमाकांत शर्मा, पृ० 122
15. पुष्करिणी (सं० अज्ञेय), भगवतीचरण वर्मा, पृ० 520

16. सीमाएँ : आत्मस्वीकृति (तारसप्तक), भारत भूषण अग्रवाल, पृ० 94
17. युग की गंगा, केदारनाथ अग्रवाल, पृ० 31
18. प्रलय-सृजन, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृ० 8.
19. छायावादोत्तर हिन्दी कविता, डॉ. रमाकान्त शर्मा, पृ० 307
20. दूसरा सप्तक, नरेश कुमार मेहता, पृ० 111
21. नया हिन्दी काव्य, डॉ० शिव कुमार मिश्र, पृ० 124
22. तीसरा सप्तक (संपादक - अज्ञेय) : कीर्ति चौधरी, पृ० 88
23. नई कविता : स्वरूप और समस्याएँ, डॉ जगदीश गुप्त, पृ० 220.
24. कविताएँ - 1, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 177
25. आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीर सहाय, पृ० 69
26. अपनी शताब्दी के नाम, दूधनाथ सिंह, पृ० 78
27. खुशहाली की पौध उगानी है (उगते सूरज के नाम), देशराज पथिक, पृ० 58
28. मृग-मरीचिका, नीरज ठाकुर, पृ० 11
29. आये दिन बहार के (तुमने कहा था संग्रह), नागार्जुन, पृ० 47
30. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ० 139
31. नाटक जारी है, लीलीधर जगूडी, पृ० 21
32. घर का रास्ता, मंगलेश डबराल, पृ० 76-77
33. निषेध, कुमार विकल, पृ० 163
34. पक गयी है धूप, रामदरश मिश्र, पृ० 22
35. आधुनिक परिवेश एवं नवलेखन, डॉ. विश्वनाथ प्रसार सिंह, पृ० 35
36. अपने खिलाफ, स्नेहमयी चौधरी, पृ० 32
37. पाषाणी, डॉ शरण बिहारी गोस्वामी, पृ० 127
38. हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना, डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० 86-87
39. निषेध, जगदीश चतुर्वेदी - पृ० 182
40. सुबह होने से पहले, सव्यसाची, पृ० 4
41. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ० 69-70
42. अकथ, डॉ. ओमानन्द सारस्वत, पृ० 27
43. आत्मनिर्वासन और अन्य कवितनाएँ, राजीव सक्सेना, पृ० 87-88
44. प्रारंभ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ० 23
45. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ० 110-111

46. ताप के ताए हुए दिन, त्रिलोचन, पृ० 52
47. 'गुमशुदा पहचान : तलाश की प्रक्रिया', डॉ. बच्चन सिंह (समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, सम्पादक डॉ. धनंजय, पृ. 90)
48. मुक्ति प्रसंग, राजकमल चौधरी, पृ० 129
49. संसद से सडक तक, धूमिल, पृ० 11
50. दीवारों पर खून से, चन्द्रकान्त देवताले, पृ० 12
51. आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीर सहाय, पृ० 86
52. संसद से सडक तक, धूमिल, पृ० 12
53. अभिव्यक्ति 1(सं. रमेश कुंतल मेघ और गंगा प्रसाद विमल), दुष्यंत कुमार, पृ० 40
54. नयी कविता में मूल्य बोध, शशि सहगल, पृ० 126
55. मुक्तिबोध रचनावली, (पांचवाँ खण्ड), नेमिचन्द्र जैन, पृ० 195
56. संसद से सडक तक, धूमिल, पृ० 52
57. निषेध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ० 30
58. कृष्ण पक्ष, विनोद चन्द्र पाण्डेय, पृ० 61
59. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ, डॉ. नगेन्द्र, पृ० 107
60. पंचपुकार (शंकर सर्वस्व), शंकर शर्मा, पृ० 165
61. अज्ञेय की काव्य चेतना और सर्जना के क्षण, डॉ. मदन गुलाटी, पृ० 32
62. चक्रव्यूह, कुँवर नारायण, पृ० 122
63. आखिर समुद्र से तात्पर्य, नरेश मेहता, पृ० 94
64. प्रतिनिधि कविताएँ, डॉ. श्यामसिंह 'शशि', पृ० 86
65. ओ प्रस्तुत मन, भरत भूषण अग्रवाल, पृ० 102
66. धूप के धान, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० 103
67. इन्द्रधनु रौंदे हुए थे, अज्ञेय, पृ० 51
68. देहान्त से हटकर, कैलाश वाजपेयी, पृ० 17
69. अस्तित्ववाद और कहानी, डॉ. लालचन्द्र गुप्त 'मंगल' - पृ० 152
70. एक सूनी नाव, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 7
71. बाँस का पुल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 21
72. बनपाखी ! सुनो !!, नरेश मेहता, पृ० 19
73. शम्बूक, डॉ. जगदीश गुप्त, पृ० 12-13
74. निषेध, विनय, पृ० 45

75. एक और पुरुष, डॉ० विनय, पृ० 124
76. निषेध, सौमित्र मोहन, पृ० 97
77. आत्मजयी, कुंवर नारायण, पृ० 36-37
78. एकाकी दोनों, स्नेहमयी चौधरी, पृ० 23
79. एक कण्ठ विषपायी, दुष्यन्त कुमार, पृ० 87
80. अस्तित्ववाद और नई कहानी, डॉ० लाल चन्द्र गुप्त 'मंगल', पृ० 210
81. इत्यलम्, अज्ञेय, पृ० 53
82. अकेले कुठकंठ की पुकार, अजित कुमार, पृ० 41
83. चकित है दुःख, भवानी प्रसाद मिश्र, पृ० 17
84. सतरंगे पंखोंवाली, नागार्जुन, पृ० 46
85. अरी ओ करुणा प्रभामय, अज्ञेय, पृ० 16-17
86. अनुक्षण - प्रभाकर माचवे, पृ० 64.
87. भारत में बन्धुत्व संगठन, इरावती कर्वे, पृ० 11
88. सुबह होने से पहले, सव्यसाची, पृ० 57
89. अक्षरों का विद्रोह, रामदेव आचार्य, पृ० 7
90. एक पुरुष और, डॉ० विनय, पृ० 124
91. अभी बिल्कुल अभी, केदारनाथ सिंह, पृ० 26
92. एक कंठ विष पायी, दुष्यन्त कुमार, पृ० 77
93. निषेध, जगदीश चतुर्वेदी, पृ० 30
94. शिला पंख, चमकीले, गिरिजाकुमार माथुर, पृ० 26-28
95. प्रारंभ (सं. जगदीश चतुर्वेदी), ममता अग्रवाल, पृ० 119
96. एक पुरुष और, डॉ० विनय, पृ० 125
97. क्षितिज की खोज, अचल राजपूत, पृ० 55
98. साये में धूप, दुष्यन्त कुमार, पृ० 21
99. सन्नाता मत बुनो, डॉ० कुँवर बेचैन, पृ० 40
100. प्रारंभ, जगदीश चतुर्वेदी, पृ० 20
101. मायादर्पण, श्रीकांत वर्मा, पृ० 13
102. मायादर्पण, श्रीकान्तवर्मा, पृ० 110
103. धूप के धान, गिरिजा कुमार माथुर, पृ० 15
104. तार सप्तक, प्रभाकर माचवे, पृ० 155

105. जो बंध नहीं सका, गिरिजा कुमार माथुर, पृ० 70
106. सुनहले शैवाल, अज्ञेय, पृ० 80
107. जमीन पक रही है, केदारनाथ सिंह, पृ० 46
108. चक्रव्यूह, कुँवर नारायण, पृ० 34
109. संक्रांत, कैलाश वाजपेयी, पृ० 17-18
110. एक पुरुष और, विनय, पृ० 129
111. अभी बिल्कुल अभी, केदार नाथ सिंह, पृ० 10
112. पक गयी है धूप, रामदरश मिश्र, पृ० 17-18
113. मुक्ति प्रसंग, राजकमल चौधरी, पृ० 11
114. सच सूर्य है, रमेश कौशिक, पृ० 32
115. हरी घास पर क्षण भर, अज्ञेय, पृ० 17
116. इतिहास-पुरुष (भारतीय ज्ञानपीठ, 1965), डॉ० देवराज, पृ० 19
117. मायादर्पण, श्रीकान्त वर्मा, पृ० 27
118. माया दर्पण, श्रीकांत वर्मा, पृ० 60
119. निषेध, डॉ० विनय, पृ० 59
120. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ० 104
121. देहांत से हटकर, कैलाश वाजपेयी, पृ० 50
122. घर का रास्ता : पता, मंगलेश डबराल, पृ० 16
123. अकाल में सारस : पूँजी : केदारनाथ सिंह, पृ० 53
124. मुक्ति प्रसंग, राजकमल चौधरी, पृ० 123
125. कितनी नावों में कितनी बार, अज्ञेय, पृ० 9
126. तार सप्तक, गिरिजा कुमार माथुर, पृ० 160
127. आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ, राजीव सक्सेना, पृ० 47
128. निषेध, रमेशगौड़, पृ० 173
129. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ० 55
130. प्रारंभ, नरेन्द्र धीर, पृ० 67
131. मछलीघर, विजयदेव नारायण साही, पृ० 74
132. अनुपस्थित लोग, भरतभूषण अग्रवाल, पृ० 32
133. संक्रांत, कैलाश वाजपेयी, पृ० 48

134. चक्रव्यूह, कुँवर नारायण, पृ० 128
135. दीवारों पर खून से, चन्द्रकांत देवताले, पृ० 9
136. कविताएँ, शिवचन्द्र शर्मा, पृ० 31
137. दर्शक दीर्घा से, बलदेव वंशी, पृ० 11
138. शर्त (निषेध), रमेश गौड़, पृ० 173
139. गुलाब और बुल-बुल, त्रिलोचन, पृ० 60
140. जलते हुए वन का वसन्त, दुष्यंत कुमार, पृ० 90
141. नाटक जारी है, लीलीधर जगूड़ी, पृ० 61
142. काठ की घंटियाँ, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ० 382-383
143. वे हाथ होते हैं, वेणु गोपाल, पृ० 14
144. निषेध, विनय, पृ० 69
145. वे हाथ होते हैं, वेणु गोपाल, पृ० 12
146. डरा हुआ आदमी (निषेध, पृ० 162), कुमार विकल
147. सात-गीत-वर्ष, धर्मवीर भारती, पृ० 69
148. तार सप्तक, धर्मवीर भारती, पृ० 188
